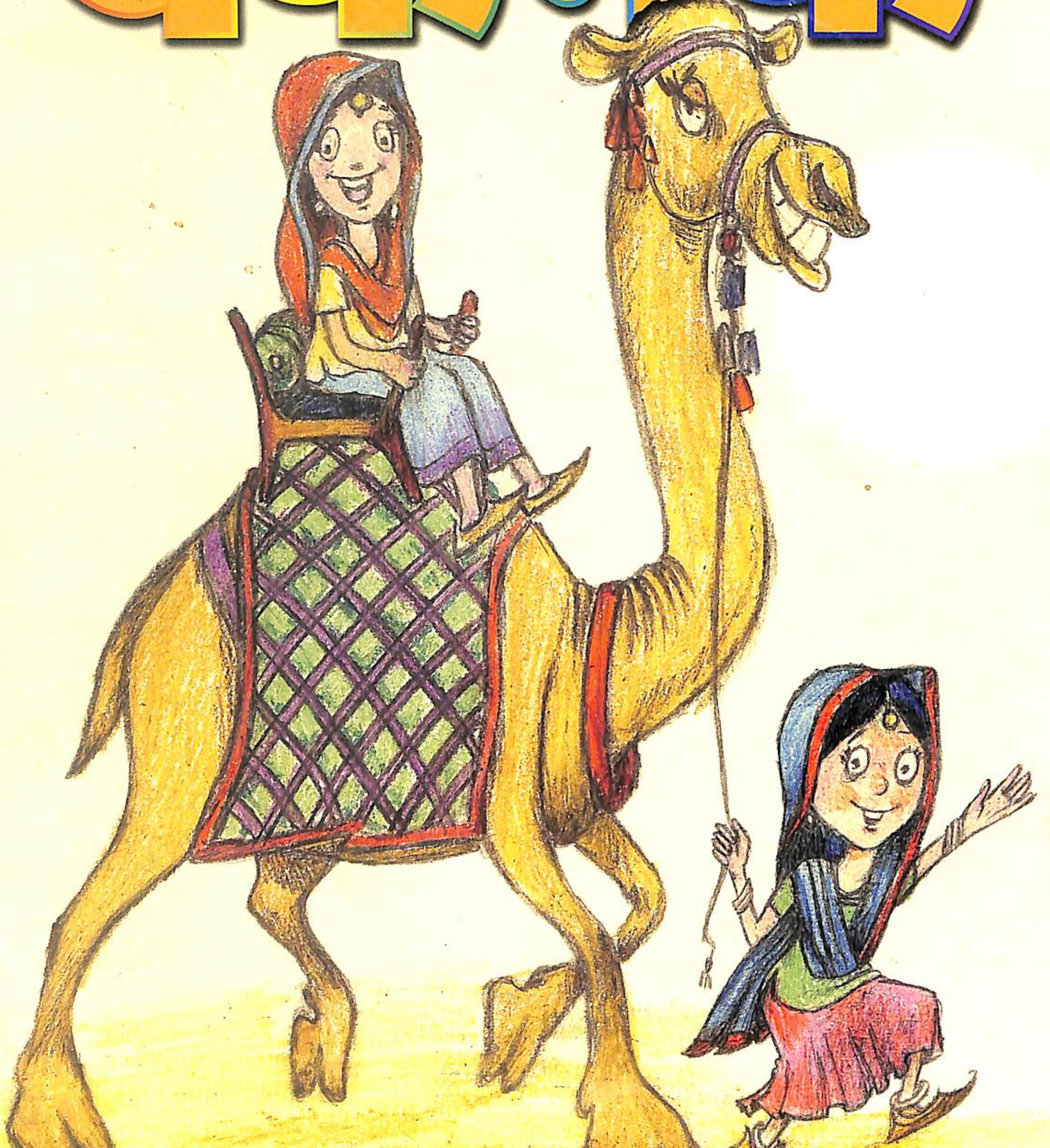
बाल विज्ञान पत्रिका

मई 2008 • 15 रुपए

# चकमक



रेत से लबालब क्या ये रेत का समन्दर है
पानी इस समन्दर का ऊँटों के अन्दर है

साहिर लुधियानवी

# वो सुबह कभी तो आएगी...

वो सुबह कभी तो आएगी
इन काली सदियों के सर से
जब रात का आँचल ढलकेगा
जब दुख के बादल पिघलेंगे
जब सुख का सागर छलकेगा
जब अम्बर झूम के नाचेगा
जब धरती नगमे गाएगी

वो सुबह कभी तो आएगी
बीतेंगे कभी तो दिन आखिर
ये भूख के और बेकारी के
टूटेंगे कभी तो दिन आखिर
दौलत-ओ-इज़ारेदारी के
जब एक अनोखी दुनिया की
बुनियाद उठाई जाएगी
वो सुबह कभी तो आएगी

मनहूस समाजी ढाँचों में
जब जुल्म न पाले जाएँगे
जब हाथ न काटे जाएँगे
जब सर न उछाले जाएँगे
जेलों के बिना जब दुनिया की
सरकार चलाई जाएगी
वो सुबह कभी तो आएगी

संसार के सारे मेहनतकश
खेतों से, मिलों से निकलेंगे
बेघर, बेदर, बेबस इन्सान
तारीक बिलों से निकलेंगे
दुनिया अमन, खुशहाली के
फूलों से सजाई जाएगी
वो सुबह कभी तो आएगी







किशोर पँवार

# मई के फूल

अप्रैल-मई का महीना लिली के नाम किया जा सकता है। बगीचों व घरों की बगियों में लाउड-स्पीकर लिली खिली दिख जाएगी। लिली के लाल, सफेद, केसरिया फूल देखने पर लगता है जैसे किसी खम्भे पर दो विपरीत दिशाओं में लाउड-स्पीकर लगे हैं। कुछ दिनों बाद ही फुटबॉल (या फूलबॉल) लिली खिल जाएगी।

मई-जून में अचानक एक लचीली डण्डी ज़मीन से फूटती हैं। लगता है जैसे फुटबॉल लिली चार-पाँच महीने की नींद से अचानक जागी हो। यह डण्डी बारह से अठारह इंच लम्बी होती है। इसका सिरा देखते ही देखते लाल-गुलाबी फूलों की गेंद में बदल जाता है। इन फूलों को देखकर चौराहे पर लगे फव्वारे की याद आती है। इस पौधे पर साल भर सरल पत्तियाँ लगी रहती हैं। जब पत्तियाँ सूख जाती हैं तो अरबी जैसा केवल सूखा कन्द ही ज़मीन के अन्दर दबा पड़ा रहता है। बसन्त के बाद अचानक इसमें अंकुर फूट पड़ते हैं। इसे पाउडर पफ लिली, अफ्रीकन लिली या मे फ्लावर भी कहते हैं।



चित्र व आकल्पन:

# चकमक

बाल विज्ञान पत्रिका • 260 • मई 2008

## इस अंक में...

















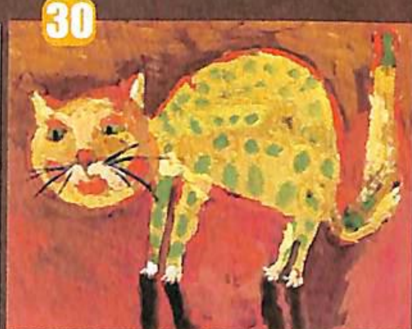






आवरणः अतनु राय









**सदस्यता शुल्क**
एक प्रति - 15.00
वार्षिक - 150.00
दो साल - 275.00
तीन साल - 400.00
आजीवन - 3000.00

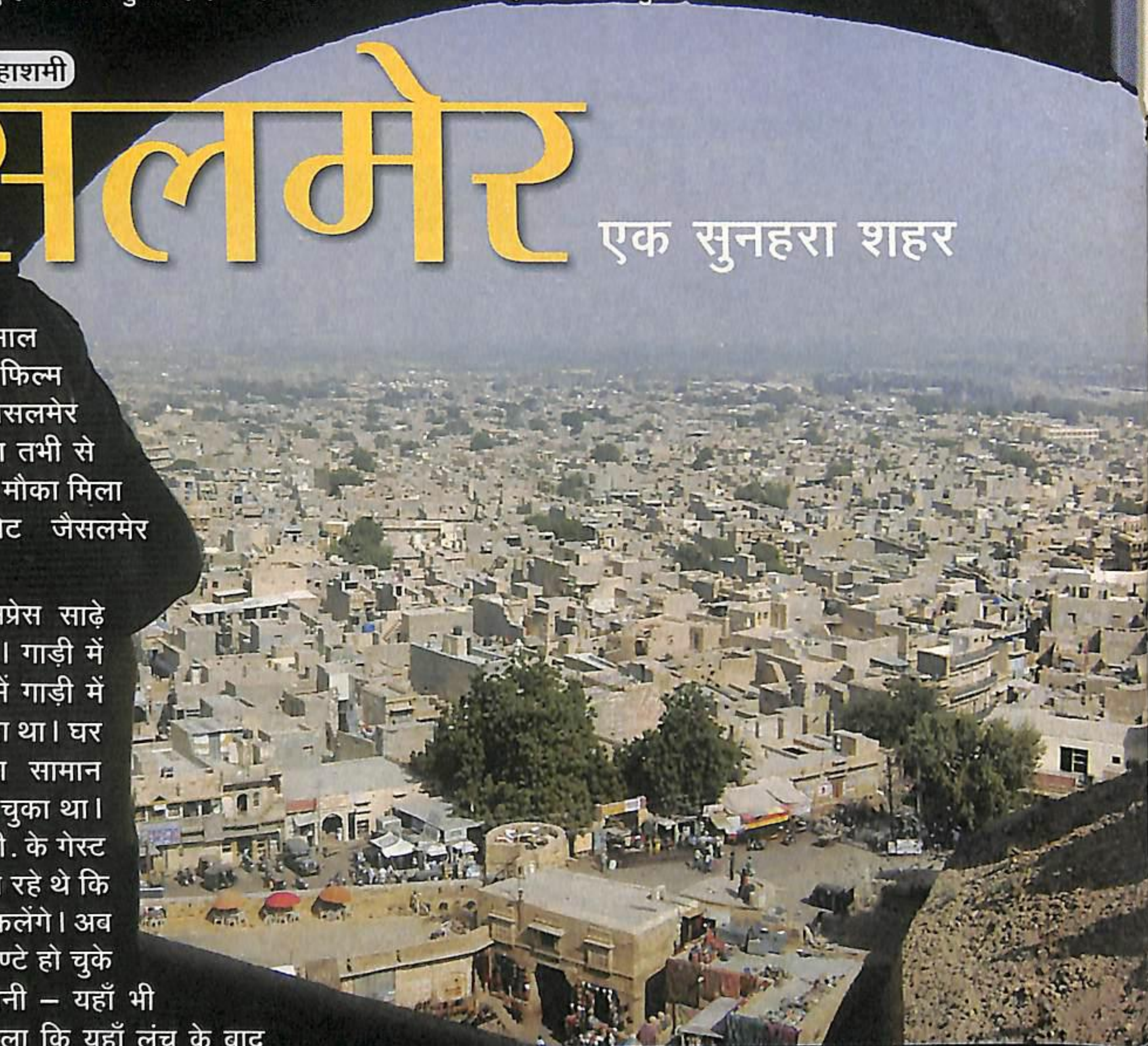
सभी डाक खर्च हम देंगे। चन्दा (एकलव्य के नाम से बने) मनीऑर्डर/चैक से भेज सकते हैं। भोपाल के बाहर के चैक में 80.00 रुपए अतिरिक्त जोड़ें।



एकलव्य
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर
भोपाल, म.प्र. 46 2016
फोनः (0755) 2671017, 2550976, 6549033
फैक्सः (0755) 2551108
chakmak@eklavya.in
www.eklavya.in

शैहला हाशमी

# जैसलमेर एक सुनहरा शहर



फोटो: मिहिर

आज से कोई तीस साल पहले सत्यजीत राय की फिल्म *शोनार किला* देखी थी। जैसलमेर का किला देखने की मंशा तभी से घर कर गई। तो इस बार मौका मिला तो बोरिया-बिस्तर लपेट जैसलमेर निकल पड़ी।

दिल्ली-जैसलमेर एक्सप्रेस साढ़े चार घण्टे देरी से पहुँची। गाड़ी में पैंट्री कार नहीं है यह हमें गाड़ी में बैठने के बाद ही पता चला था। घर से लाया खाने-पीने का सामान पिछली रात ही खत्म हो चुका था। भूखे-प्यासे आर.टी.डी.सी. के गेस्ट हाऊस मूमल पहुँचे। सोच रहे थे कि कुछ खा-पीकर घूमने निकलेंगे। अब तक घर से निकले 24 घण्टे हो चुके थे। लेकिन किस्मत अपनी – यहाँ भी कुछ नहीं मिला! पता चला कि यहाँ लंच के बाद सीधा डिनर परोसने का रिवाज़ है। खैर नहा धोकर जीप में बैठ घूमने निकल पड़े। शहर का भूगोल समझने की कोशिश की। रात के 8 बजते-बजते जब मूमल पहुँचे तब तक भोजन का ऐलान हो चुका था। खाना सामने देख मूमल के अतिथि सत्कार को जी भर कर सराहा और फुर्ती से थाली खाली कर डाली।

अगले दिन सुबह-सवेरे जैसलमेर की सैर को निकले।

मिहिर

**जैसलमेर** की यात्रा और सिर्फ तीन दिन का समय... बहुत कम है दोस्तो। लेकिन पिछली दिवाली में मेरी इस 20-20 ओवर के मैच जैसी जैसलमेर यात्रा में मुझे ऐसे कई किस्से मिले जो हमेशा याद रहेंगे। इनमें से कुछ मज़ेदार किस्से यहाँ तुम्हारे साथ बाँट रहा हूँ। उम्मीद है तुम्हें भी मज़ा आएगा इन्हें सुनकर...

जयपुर से चले थे रात में। रेलगाड़ी में रात को ओढ़ने-बिछाने का सारा इन्तज़ाम साथ लेकर। सुबह जोधपुर तक तो सब ठीक था। उसके बाद जैसे-जैसे रेल का आगे का सफर शुरू हुआ एक-एक करके हमारे गरम कपड़े उतरने लगे। मुझे बचपन में देखी सत्यजीत राय की फिल्म *गूपी गाईन, बाघा बाईन* याद आ गई। इस फिल्म में भी अचानक



शोनार किला



फोटोः मिहिर

पश्चिमी राजस्थान में अन्तर्राष्ट्रीय सीमा के पास थार की मरुभूमि में स्थित जैसलमेर उत्तर भारत के हिसाब से एक छोटा शहर ही माना जाएगा। यहाँ ज़ोरदार गर्मी पड़ती है। तापमान 48 डिग्री सेंटीग्रेड से भी ऊपर पहुँच जाता है और बारिश न के बराबर होती है – 16 सें. मी.। यहाँ की जलवायु काफी गर्म और शुष्क है।

इस सुन्दर शहर की स्थापना सन् 1156 ई. में राव जैसल ने की थी। यहाँ के शासकों का आमदनी का ज़रिया था – दिल्ली की ओर जाते गरम मसालों के कारवाँ से ज़बरदस्ती लगान वसूलना और आसपास के किलों पर हमला कर लूट-खसोट करना। इस तरह व्यापारियों और शासकों दोनों के वारे-न्यारे हुआ करते थे। जमा दौलत सुन्दर महल-हवेलियाँ बनाने और उनमें अनमोल चीज़ें जमा करने में खर्च की जाती थी। दूर-दराज और दुर्गम इलाके में होने की वजह से खुद जैसलमेर बाहर के हमलों से बचा रहा।

## शोनार किला

रंगीन इतिहास वाली इस खूबसूरत, सुनहरी नगरी में देशी-विदेशी सैलानियों का ताँता लगा रहता है। किला कोई 100 फुट ऊँची पहाड़ी पर बना है और दूर से ही नज़र आ जाता है। इस शानदार किले की दीवारों और उसकी आकृति से मज़बूती और भव्यता झलकती है। इसकी बनावट भी अनोखी है। इसको बनाने में चूने-गारे का इस्तेमाल नहीं किया गया है। पत्थर के बड़े-बड़े चौरस टुकड़ों को बॉल और सॉकेट जोड़ के ज़रिए जोड़ा गया है। मेरे ख्याल से पानी की कमी की वजह से इस तकनीक का इस्तेमाल किया गया होगा। एक और चीज़ पर मेरा ध्यान अटका – इस किले पर काई के काले निशान नज़र नहीं आते हैं जो आमतौर पर पुरानी इमारतों और किलों पर दिखते हैं। इसका कारण भी शायद बारिश की कमी ही हो। कारण कुछ भी हों पर शोनार किला आज भी खूब चमकता हुआ, साफ और पीला दिखाई देता है – शायद 8 सौ साल पहले जैसा ही। यह किला एक खास तरह के पीले बलुआ पत्थर (सैंड स्टोन) का बना है जो जैसलमेर में ही पाया जाता है।



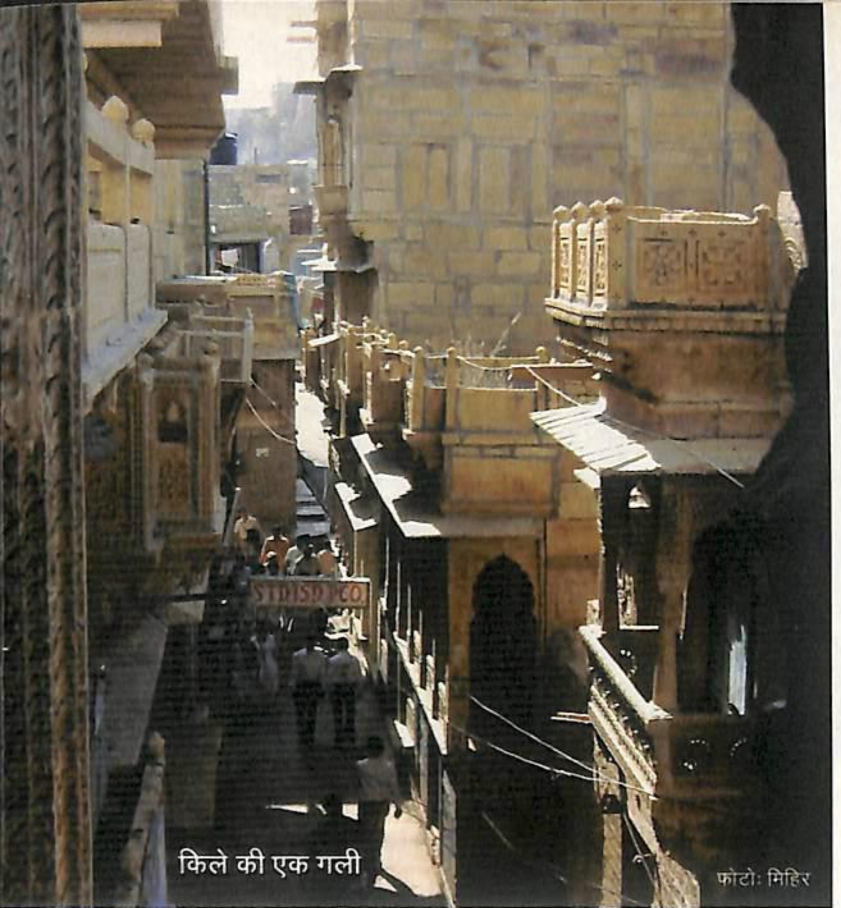

इस किले की मज़बूत चारदीवारी के बीच महल, हवेलियाँ, रिहायशी बस्तियाँ, जैन मन्दिर, बाज़ार सभी कुछ हैं। आधुनिक संचार साधन तक इस किले में मौजूद हैं। किले के भीतर एक साईबर कैफे के मालिक ने बताया कि यह दुनिया का अकेला किला है जहाँ अभी भी आबादी है। जो परिवार पुराने ज़माने से जहाँ बसे थे वहीं कई पीढ़ियों से रह रहे हैं (वैसे कम से कम भारत में तो कई किले-महल हैं जहाँ सालों-साल से लोग रह रहे हैं।)। साईबर कैफे के इस

ठण्डे देश से गरम प्रदेश में पहुँच जाने पर गूपी और बाघा ऐसे ही अपने गरम कपड़े उतारते हैं। दोपहर में रेल के रास्ते में ही धूल का तूफान आया। सारी खिड़कियाँ बन्द कर लेने के बावजूद जो धूल सारे डब्बे में भरी कि पूछो मत। हमारे गरम कपड़े जो बैग के अन्दर गए तो फिर वापस जयपुर आकर ही निकले!

जैसलमेर रेलवे स्टेशन आने से कुछ पहले ही मशहूर शोनार किला (सोने का किला) दिखने लगता है। तुम्हें पता है इस किले को यह नाम सत्यजीत राय के इस नाम से लिखे एक मशहूर उपन्यास से मिला है। यह एक जासूसी उपन्यास



फोटो: साभार फोटर्स ऑफ इंडिया



किले की एक गली

फोटोः मिहिर

नौजवान ने अपनी कमीज़ पर "नो वॉर" का बिल्ला लगा रखा था। देखकर अच्छा लगा कि इतने दूर-दराज के इलाकों में भी लोग ईराक पर अमरीका के नाजायज़ हमला करने के खिलाफ आवाज़ उठा रहे हैं।

किले के भीतर रहने वाले लोगों को पर्यटकों के आने से काफी फायदा पहुँचा है। छोटी-छोटी, पतली, बलखाती गलियों में राजस्थानी कढ़ाई व छपाई की चादरें, शीशे का काम, तैयार कपड़े, थैले, चाँदी के ज़ेवर, काँसे की मूर्तियाँ, नग, ऊँट की खाल के बैग, टोपियाँ... और भी बहुत कुछ मिलता है। इनको खरीदने से पहले खरीदने की कला सीखना ज़रूरी है। यहाँ दाम कहीं के कहीं तक हो जाते हैं।







हमारे आगे-आगे एक अधेड़ जैसलमेरी इटालवी में बोलते हुए अपने विदेशी मेहमानों को किले की सैर करा रहा था!

## शहर जैसलमेर

किले के चारों ओर काफी दूर तक जैसलमेर फैला हुआ है। यहाँ काफी पुरानी हवेलियाँ और मकान हैं। साथ ही यहाँ एक आधुनिक शहर की सभी सहूलियतें भी हैं – पेट्रोल पम्प, बैंक, स्कूल, रेस्तराँ, होटल, बाज़ार, डाकघर और बहुत कुछ। शहर की छोटी-छोटी गलियों, बाज़ारों में ज़िन्दगी अपनी रफ्तार से चलती है। साइकिल, स्कूटर, तिपहिया, गाड़ियाँ सभी दौड़ी-फिरती हैं। लगता ही नहीं कि हम मरुभूमि के बीचों-बीच बैठे हैं!

इस आधुनिकता और विकास के बावजूद जैसलमेर के भवन-निर्माण में मुझे एक सहजता और समानता नज़र आई। नए मकान नए ढंग से बनने के बावजूद बाहर से पुराने मकानों और हवेलियों से अलग नहीं लगते। जालियाँ, झरोखे व सुन्दर मुख्य द्वार आज भी बनाए जाते हैं।

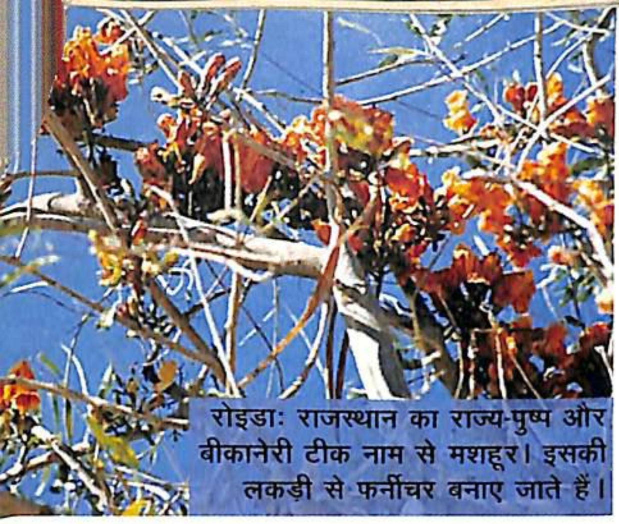
पूरे किले और शहर में पीले पत्थरों पर की गई नक्काशी देखते ही बनती है। कैसे किया होगा इतना बारीक काम? सुन्दर महीन जालियाँ, झरोखे, महराबें हैरान कर देते हैं। इन्हें बनाने वाले अनाम कलाकारों के लिए मन में इज़्ज़त

था जिसमें सत्यजीत राय द्वारा रचित जासूस फेलूदा एक उलझी गुत्थी सुलझाने पूरा भारत पार करते हुए कलकत्ता से जैसलमेर आता है। उपन्यास में जैसलमेर के रास्ते में आने वाली कई जगहों का भी ज़िक्र आता है। इसीलिए पोखरण और रामदेवरा से गुज़रते हुए मुझे कई बार *शोनार किला* की याद आई। अगले दिन हम इस किले को देखने गए।

सोनार किला एक मज़ेदार जगह है। किला होने के बावजूद इसके भीतर बड़ी संख्या में परिवार रहते हैं। इन परिवारों के लिए आने वाले पर्यटक ही उनकी रोज़ी-रोटी हैं। किले के अन्दर एक लाइन से दुकानें सजी हैं। इनमें सजावटी सामानों से लेकर खूबसूरत कपड़ों तक सब मिलता है। एक जगह तो इतनी रंग-बिरंगी जूतियाँ सजी थीं कि मुझे होली के रंग याद हो आए। जब मैं तस्वीर लेने के लिए किसी खूबसूरत दुकान के बाहर रुकता तो अचानक कई आवाज़ें मुझे भीतर बुलाने लगतीं! एक दुकान के बाहर मैंने लिखा देखा, "थैंक यू लोनली प्लैनेट फॉर मेकिंग अस अनइम्प्लॉइड" (हमें बेरोज़गार बनाने के लिए लोनली प्लैनेट तेरा शुक्रिया)। पता चला कि दुनिया भर में चर्चित पर्यटक गाइड *लोनली प्लैनेट* में किसी ने इस जगह के बारे में कुछ खराब लिख दिया है। इसलिए विदेशी पर्यटकों का यहाँ



फोटोः सी. एन. सुब्रह्मण्यम्



रोइडा: राजस्थान का राज्य-पुष्प और बीकानेरी टीक नाम से मशहूर। इसकी लकड़ी से फर्नीचर बनाए जाते हैं।

बढ़ने लगती है। हिन्दुस्तानी और ईरानी भवन निर्माण कला का अनोखा मेल जैसलमेर की इन हवेलियों में हमें देखने को मिला। एक ओर पत्थरों पर तरह-तरह की मूर्तियाँ हैं वहीं दूसरी ओर महराबें, ज्यामितीय डिज़ाइन और गुम्बद वाली छतरियाँ भी हैं। हमारी मिली-जुली विरासत और संस्कृति का नमूना!

आजकल की तरह उन दिनों भी इमारत बनाने की मुख्य ज़िम्मेदारी वास्तुकार की हुआ करती थी। उसे गजधर कहा जाता था। एक माप के पत्थरों को कटवाना, उन पर रंगों से डिज़ाइन बनवाना और फिर सिलवाटा (पत्थर पर छैनी हथौड़ी से खुदाई करने वाले) से जालियाँ व मूर्तियाँ बनवाना – अपनी निगरानी में ये सभी काम गजधर ही करवाता था।

## पटवों की हवेली

इस छोटे-से शहर में कुछ भी देख पाना मुश्किल नहीं है। एक स्कूटर वाले से बात पक्की कर ली। उसने न सिर्फ हवेली घुमाई बल्कि एक अच्छे गाईड की तरह कई मज़ेदार बातें भी बताईं। शहर की छोटी-छोटी गलियों में से होते हुए हम पटवों की हवेली के सामने पहुँच गए।

सन् 1800 से 1860 के दौरान पाँच व्यापारी भाइयों ने ये बेहद खूबसूरत हवेलियाँ बनवाई थीं। पटवों का व्यापार चीन, सिंध और अफगानिस्तान तक फैला हुआ था। सोना, चाँदी, गरममसाले, अफीम, नील आदि बेचकर उन्होंने काफी सारा धन कमा लिया था। उदयपुर और जैसलमेर की रियासतों को उधार तक देने की ताकत थी उनकी। अपनी अथाह दौलत का बहुत बड़ा हिस्सा उन्होंने इन हवेलियों पर खर्च किया होगा।



किले में बने जैन मन्दिर का एक हिस्सा फोटो: मिहिर

समय के साथ भीतर की काफी चीज़ें खराब हो रही हैं। रिहायशी इलाके में फर्श मिट्टी के बने हैं, शायद ठण्डा रखने के लिए। भीतर की छत लकड़ी की है और उस पर खूबसूरत बेल-बूटे बने हुए हैं। इन पर सोने का पानी चढ़ा है जो अब फीका पड़ गया है। कमरों के दरवाज़े मोटी लकड़ी के हैं। उन पर भी लोहे की पत्ती से बेल-बूटे बने हुए हैं। इन दीवारों में धन छिपाने के लिए चोर तिजोरियाँ भी हैं। एक और कमाल की बात पता चली कि इन हवेलियों में भी चूने या सीमेंट का इस्तेमाल नहीं किया गया है। पत्थर को पत्थर से जोड़कर बनाया गया है। सीढ़ियों और छज्जों आदि में मज़बूती के लिए लोहे का क्लैम्प दो पत्थरों को जोड़े रखता है। इस लोहे में कहीं जंग आदि नज़र नहीं आया। वाकई काबिले तारीफ बात है।

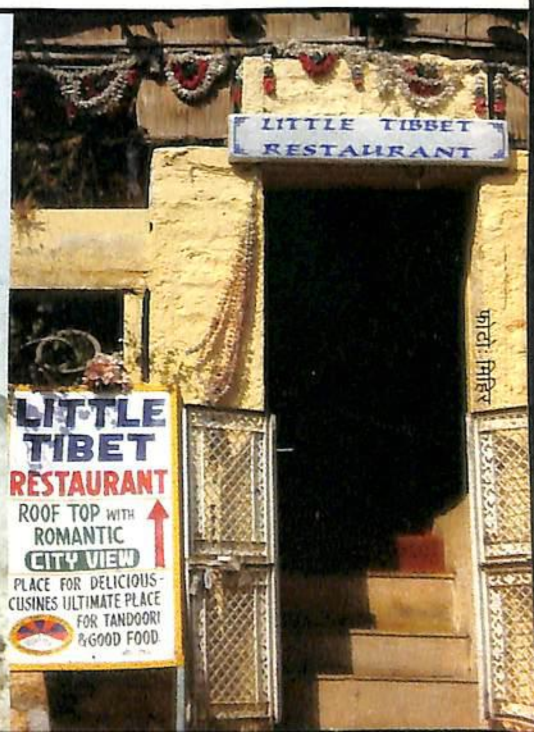
आना कम हो गया है। भई वाह, जैसलमेर के व्यवसायियों का गुस्सा दिखाने के इस अन्दाज़ की क्या बात है!




दुनिया सच में बहुत छोटी है दोस्तो! देश के इस सुदूरवर्ती पश्चिमी ज़िले में हमें "दुनिया की छत" तिब्बत से आए दोस्त भी मिले। ये लोग किले के अन्दर ही एक रेस्तराँ चलाते हैं जिसका नाम है – फ्री तिब्बत रूफ टॉप रेस्टोरेंट। अब कहाँ तिब्बत की बर्फ और कहाँ जैसलमेर की तेज़ गरमी... लेकिन काम की तलाश क्या-क्या नहीं करवाती। और फिर पेट भर खाना, सर ढँकने को छत मिल जाए तो परदेस भी घर हो जाता है।

शाम को हम सम देखने गए। सम यानी असली रेगिस्तान। यह जगह जैसलमेर शहर से कोई 20-30






फोटो: मिहिर



काम की और काज की, गुल्लक अनाज की



बकरी के बालों से बुनाई



कुएँ में पानी कित्ता-कित्ता

इन हवेलियों का भीतरी रिहायशी हिस्सा बहुत ही छोटा और अँधेरा था। कमरे काफी छोटे-छोटे थे। फरवरी के महीने में भी अन्दर काफी घुटन महसूस हो रही थी जबकि बाहर मौसम अच्छा था। इसमें खुला आँगन या बारामदा भी नहीं था। अपना सारा जीवन घरों में बिताने वाली औरतों के बारे में सोच कुछ बेचैनी होने लगी और बच्चे कहाँ खेलते होंगे?

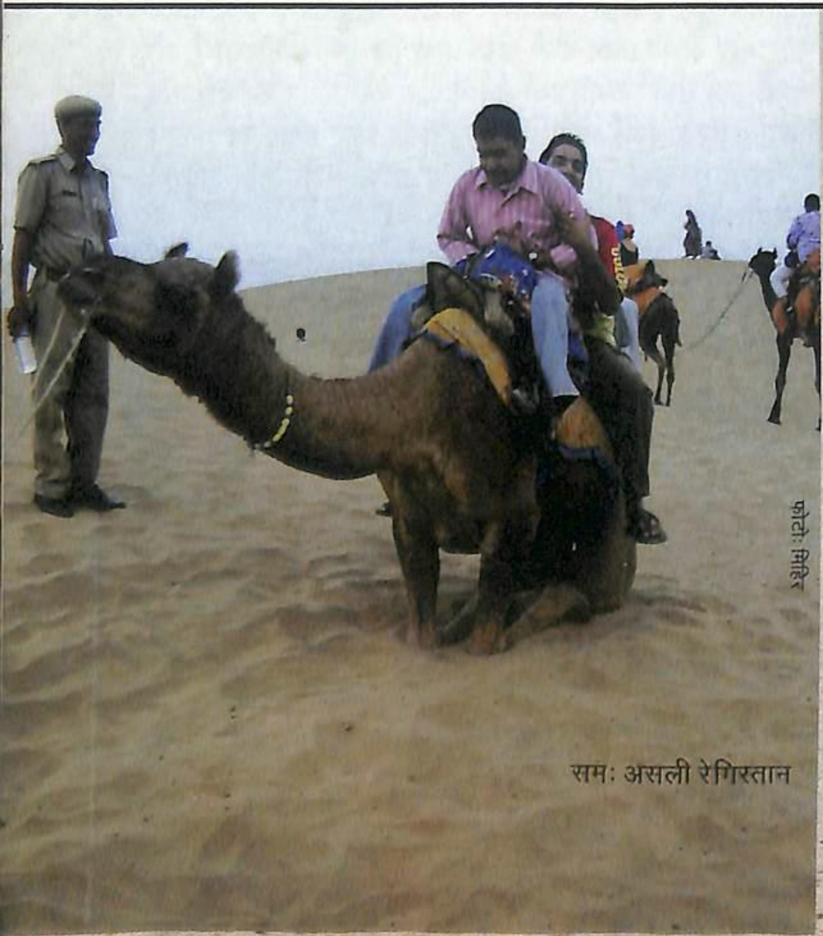
आज इन पाँच पटवा हवेलियों में से तीन पुरातन विभाग के पास हैं। एक हवेली निजी हाथों में है एक गैलरी और दुकान की तरह इस्तेमाल होती है। यहाँ के एक कारिन्दे ने बताया कि इस हवेली को भीतर के सारे सामान समेत ही खरीद लिया गया था। क्योंकि पुरातन विभाग के नियमों के तहत यहाँ की सारी चीज़ें राष्ट्रीय धरोहर हैं और कुछ भी बाहर नहीं निकाला जा सकता। इसीलिए यह एक गैलरी में बदल दी गई है। चकमक

जारी...



पानी पिलाता गधा

सभी फोटोः सी. एन. सुब्रह्मण्यम्



फोटोः मिहिर

समः असली रेगिस्तान

किलोमीटर दूर होगी। रेत के दूर-दूर तक फैले टीलों को देखने और ऊँट की सवारी करने यहाँ बहुत लोग आते हैं। हम जिस ऊँट पर बैठे उसका नाम माईकल था। मुझे डर लगा कि कहीं इसने माइकल जैक्सन की तरह नाचना शुरू कर दिया तो हमारा क्या होगा! लेकिन माइकल एक सीखा हुआ ऊँट था। उसने हम नौसिखिए लड़कों को ज़रा भी परेशानी नहीं होने दी। हमें लगता रहा कि हम उसे चला रहे हैं लेकिन दरअसल वो हमें घुमा रहा था। उसके मालिक उसे जैसा कहते वो वैसा ही करता। वो अपने मालिक की आवाज़ से ही समझ जाता था कि कब उठना है, कब चलना है। यह एक मज़ेदार अनुभव था। चकमक

जारी...



फोटोः सी. एन. सुब्रह्मण्यम्

**एक है सवा नाः सवाना घास जिसे खाती है बकरी और उसके दूध से बनती है स्वादिष्ट बीकानेरी मिठाई।**

स्वयं प्रकाश

# मुझे वह थप्पड़ आज तक याद है

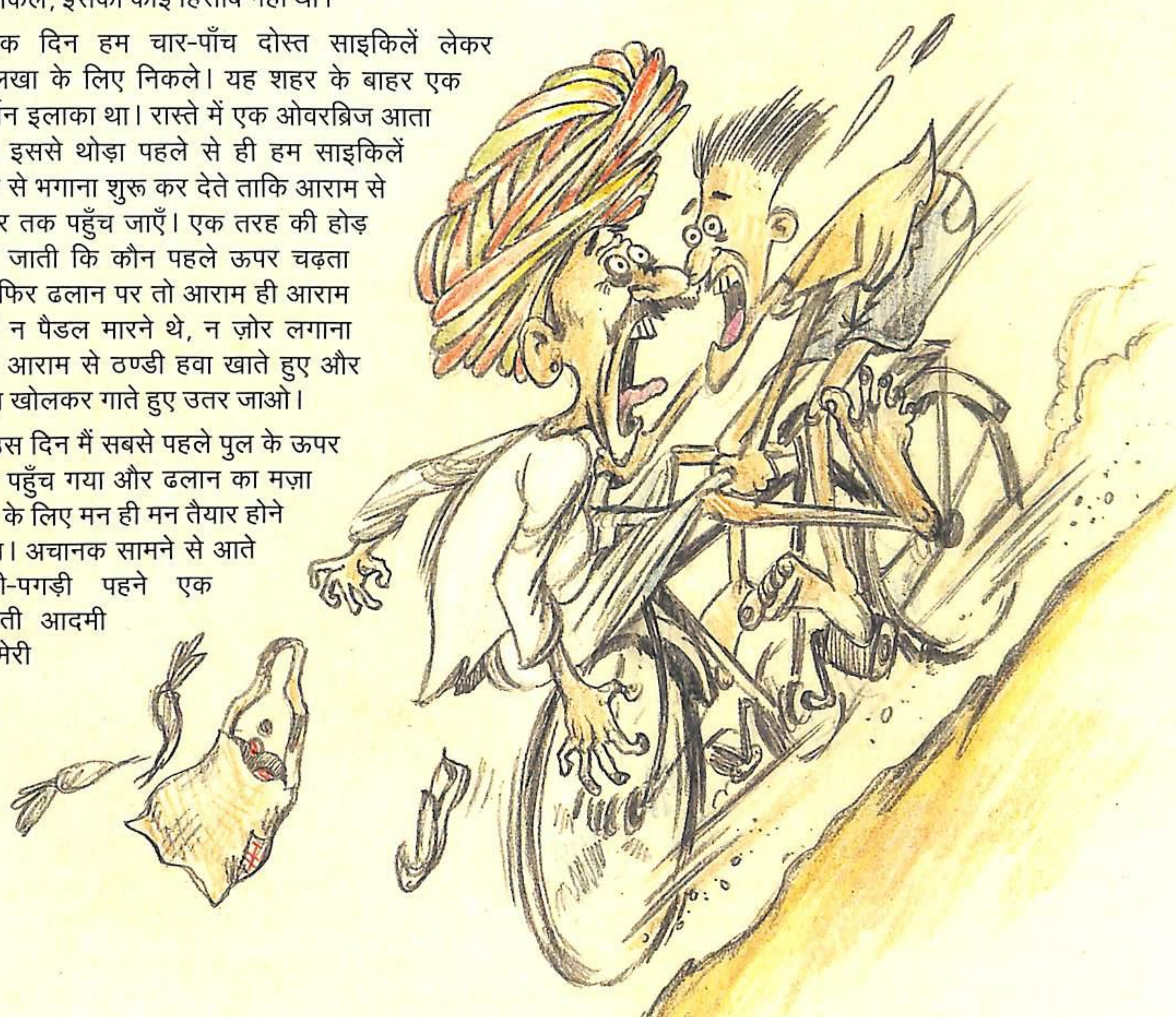
**प्यारे भाई रामसहाय,**

बात तब की है जब मैं सातवीं कक्षा में पढ़ता था। हम चार-पाँच दोस्त साइकिल चलाना सीख रहे थे। हम एक घण्टे के लिए किराए की साइकिलें लेते और शहर से बाहर किसी खुली सड़क पर साइकिल चलाने का अभ्यास करते। मुझे साइकिल चलाना तो आ गया, बस उस पर चढ़ना और उतरना नहीं आया। इसके लिए मैं साइकिल को किसी बड़े पत्थर, चबूतरे या आटले के पास खड़ा करके उस पर बैठ जाता और उतरने के लिए भी ऐसा ही कोई सहारा ढूँढता। फिर भी कितनी बार मैं गिरा होऊँगा और कितनी बार साइकिल, इसका कोई हिसाब नहीं था।

एक दिन हम चार-पाँच दोस्त साइकिलें लेकर नवलखा के लिए निकले। यह शहर के बाहर एक निर्जन इलाका था। रास्ते में एक ओवरब्रिज आता था। इससे थोड़ा पहले से ही हम साइकिलें ज़ोर से भगाना शुरू कर देते ताकि आराम से ऊपर तक पहुँच जाएँ। एक तरह की होड़ लग जाती कि कौन पहले ऊपर चढ़ता है। फिर ढलान पर तो आराम ही आराम था। न पैडल मारने थे, न ज़ोर लगाना था। आराम से ठण्डी हवा खाते हुए और गला खोलकर गाते हुए उतर जाओ।

उस दिन मैं सबसे पहले पुल के ऊपर तक पहुँच गया और ढलान का मज़ा लेने के लिए मन ही मन तैयार होने लगा। अचानक सामने से आते धोती-पगड़ी पहने एक देहाती आदमी पर मेरी नज़र पड़ी। एक पल के लिए डर लगा कि ढलान पर लुढ़कते हुए मेरी साइकिल कहीं इससे टकरा तो नहीं जाएगी? मैंने दोनों ब्रेक ज़ोर से दबाए ..... लेकिन साइकिल की रफ्तार में कोई फर्क नहीं पड़ा। ब्रेक काम नहीं कर रहे थे। किराए की साइकिलों में अक्सर ऐसा होता था। ब्रेक ढीले हो जाते थे या ब्रेक के गुटके टेढ़े हो जाते थे। मैं डर गया। हड़बड़ा गया। और हड़बड़ाहट में वही हुआ जिसका मुझे डर था। मेरी साइकिल सामने से आते धोती-पगड़ी वाले आदमी की दोनों टाँगों के बीच घुस गई।

*बाकी का किस्सा पेज 23 पर*



## एक था राजा!

राजा के दो हाथ थे। एक का नाम था "दायाँ" और दूसरे का "बायाँ"। राजा को जब कोई काम न होता, तो ये दोनों बैठे-ठाले आपस में उँगलियाँ लड़ाया करते थे। एक-दूसरे की पीठ खुजाते। हथेलियाँ मलते। कभी एक-दूसरे के नाखून काटते।

दोनों को एक बुरी आदत थी। राजा जब कोई बात करता तो वे उस की बातों की नकल करने लगते। राजा कहता चाँद गोल है तो दायाँ एक उँगली खोलकर दायरा बना देता। कभी-कभी इसमें बायाँ भी शामिल हो जाता और दोनों मिलकर एक गोल फुटबॉल की शक्ल बना देते। बायाँ ज़रा कम बोलता था, लेकिन दायाँ तो ढीठ था। उस से रहा ही नहीं जाता था। राजा की हर बात पे हरकत में आ जाता था। राजा छींकने लगता तो दायाँ ख्वामख्वा नाक मसल-मसल के उसे रोकने की कोशिश करता। पर छींक तो आनी ही थी। आई छींक को कौन टाल सकता है?

राजा जब खाना खाने बैठता तो वही निवाले तोड़-तोड़ के मुँह में डालता था। उसे हिचकी आती तो फौरन पानी का गिलास उठाकर उस के मुँह पे लगा देता।

सेवा में इतने चुस्त दोनों कि राजा कभी सूरज की तरफ देखता तो उस के कहने से पहले दायाँ लपक के आँख पे साया कर देता।

कभी-कभी जल्दी भी कर बैठते थे। दाएँ ने जल्दी की सेवा में। राजा को मालूम था कि दूध का गिलास गर्म है। लेकिन दाएँ ने होशियारी की, और अपनी दो उँगलियाँ जला लीं। दूध राजा के कपड़ों पर गिरा दिया। राजा ने ज़्यादा कुछ नहीं कहा, "आ तेरी.... कम्बख्त!" बस इतना कहके चुप हो गए। बाएँ ने बढ़के राजा के कपड़े झाड़ दिए, बस! राजा ने भी हमदर्दी जताई और डॉक्टर को बुला के मरहम लगवा दी।

दोनों सेवादार भी थे। वफादार भी थे। राजा की लड़ाई हो जाती किसी दुश्मन से, तो दायाँ फौरन तलवार खींच लेता था और बायाँ ढाल सम्भाल लेता। राजा घोड़े पर सवार होता तो दायाँ चाबुक सम्भाल लेता और बायाँ घोड़े की लगाम खींच के रखता था।

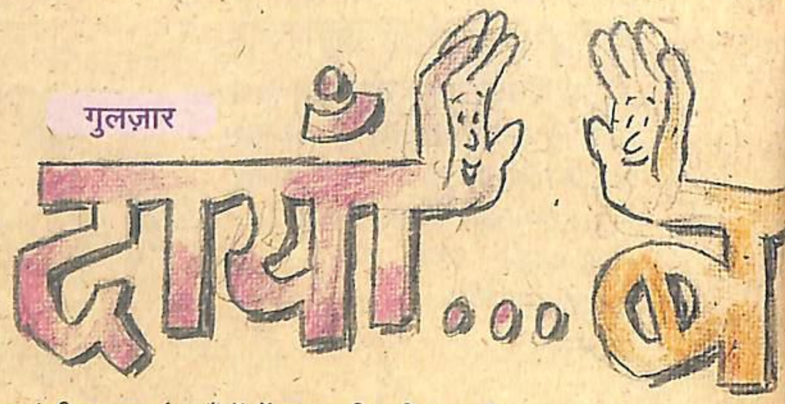
कभी राजा अपने ही ख्यालों में गुम होता तो वो मुँह लगे बारी-बारी उठते और राजा की मूँछें मरोड़ देते। कभी दाढ़ी में उँगलियाँ फेरने लगते! राजा बैठने का इरादा करता तो दायाँ झूलकर कुर्सी उठा लेता। या राजा के "कुर्सी बाग में लगा दो" कहते ही दायाँ उँगली के इशारे से नौकर को बुला लेता।

वफादार ऐसे कि राजा जो भी सोचता, बायाँ कागज़ निकालकर सामने करता और दायाँ फौरन दर्ज़ कर देता। कभी-कभी राजा थक जाता था उन दोनों से। इसलिए सोते वक्त दाएँ को तो सर के नीचे दबा लेता और बाएँ को खुला छोड़ देता। उसने देखा था कि दोनों एक-दूसरे के बेलगाम गवाह थे। एक हिलता तो दूसरा हिलता ज़रूर था।

नहलाते-धुलाते वही दोनों थे। राजा के कुछ कहने से पहले ही दायाँ साबुन उठा लेता और बाएँ से कहता, "बाएँ मल। ज़ोर से मल!" राजा की बगलों में साबुन लगाने के लिए एक-दूसरे से छीन भी लेते थे। शरारती भी थे। कभी-कभी बायाँ राजा की आँख पे साबुन लगा देता तो राजा चिल्लाने लगता। दायाँ जल्दी-जल्दी पानी का लोटा उठा के राजा की आँखों पर उड़ेल देता और आँखें मल के साबुन की झाग बहा देता। लेकिन कभी-कभी राजा झरने के नीचे खड़ा हो जाता तो राज़ा को बहुत मज़ा आता, लेकिन ये दोनों छटपटाने लगते।

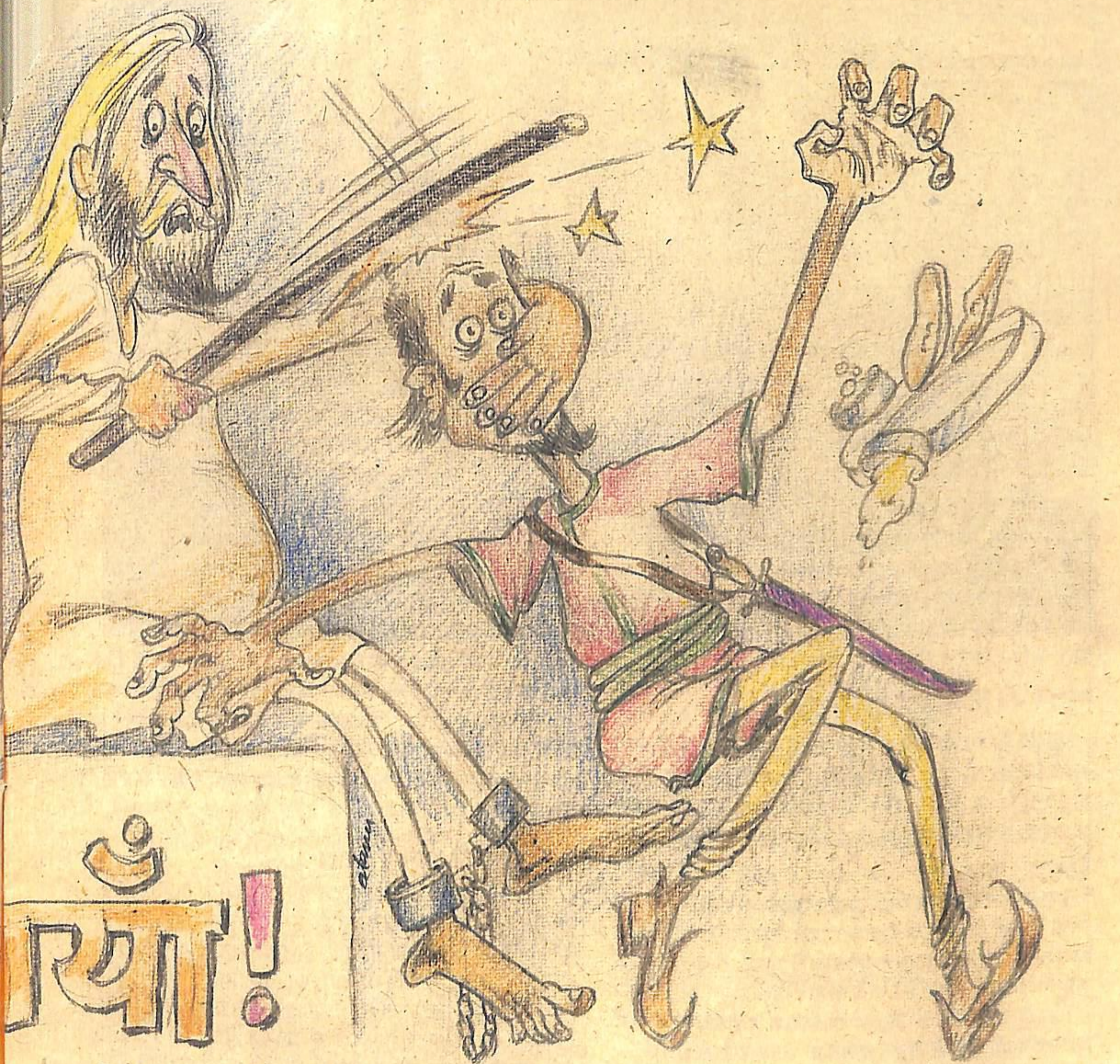
एक बार राजा के वज़ीर ने बगावत कर दी। और जब बगावत की तो राजा की ख्वाबगाह में घुस के सब से पहले इन्हीं दोनों को हथकड़ियाँ पहनाईं। राजा की बेबसी देखकर दोनों को बहुत गुस्सा आया। उँगलियाँ भींच-भींचकर मुट्ठियाँ दिखाईं। लेकिन करते क्या? मजबूर थे बेचारे। न अपनी कुछ मदद कर सकते थे, न राजा की। वज़ीर ने राजा को ले जाकर किले की मीनार में बन्द कर दिया। और दीवार के खूँटे से

गुलज़ार



एक जंज़ीर राजा के पाँवों में डाल दी। मीनार की ऊपर वाली कोठरी में कोई खिड़की, रोशनदान भी नहीं था। सिर्फ एक सलाखों वाला दरवाज़ा था जहाँ से पहरेदार आकर खाने की थाली रखता और लौट जाता। दोनों चाहते थे किसी तरह निवाला तोड़कर राजा के मुँह में डालें। लेकिन राजा बहुत गुस्से में था। दायाँ, बायाँ अपनी उँगली भींच के रह जाते। राजा की मजबूरी पर दोनों को बड़ी तकलीफ होती।

एक रोज़ दोनों ने मिलकर दरवाज़े की कोने वाली सलाख पकड़ी और राजा से कहा कि तुम भी ज़ोर लगाओ। और टेढ़ी कर के वो सलाख बाहर निकाल ली। उस रोज़ जब पहरेदार दाखिल हुआ तो बाएँ ने झटके से उसकी पगड़ी के पैर की



गिरा दी और दाएँ ने सलाख उसके सर पे दे मारी। जैसे ही पहरेदार ने चीखने के लिए मुँह खोला, बाएँ ने उसका मुँह बन्द किया और दाएँ ने जल्दी से उस की पगड़ी उसी के मुँह में ठूँस के औंधा कर लिया। दोनों ने मिल के उसी की पगड़ी से उसे गठरी की तरह बाँध दिया। दोनों ने कन्धे-कुहनी तक का ज़ोर लगा के राजा के पैर की जंज़ीर खोल दी। राजा के लिए मौका था। वह दरवाज़े से बाहर निकला और ऊपर की छत पर चढ़ के किले के पीछे वाली नदी में कूद गया। दाएँ-बाएँ ने भी खूब हाथ चलाए और राजा को लेकर दूसरे किनारे पर पहुँच गए।

फिर क्या था। पास ही घास चरता एक घोड़ा दिखा। दोनों ने उसकी गर्दन पे हाथ फेरा, फुसलाया और राजा को उसकी पीठ पर लेकर, गाँव पार कर के सल्तनत की हद से बाहर निकल गए।

राजा का रसूख पड़ोसी राजाओं के साथ अच्छा था। महीने भर में पड़ोसी की फौजें लेकर लौटा और गद्दार वज़ीर को निकाल बाहर किया।

फतह के बाद जब राजा रथ पे सवार शहर से गुज़रा तो फतह का झण्डा उसने दाएँ-बाएँ के हाथ में थमा दिया था। दोनों बारी-बारी उसको लहरा-लहरा कर लोगों की जय-जयकार का जवाब दे रहे थे तो राजा मुस्कुरा-मुस्कुराकर यही काम कर रहे थे।

सुशील जोशी

# इन्द्रधनुष और तत्वों की खोज

शायद ही कोई हो जिसने इन्द्रधनुष नहीं देखा होगा! आकाश में रंगों की कमान-सी तन जाती है। मगर यह न सोचना कि आकाश में रंगों का मेला सिर्फ इन्द्रधनुष के साथ ही लगता है। सुबह-शाम आकाश रंग बदलता है। दिन भर का नीला आकाश, सुबह-शाम को नारंगी-पीला हो जाता है। आखिर ये रंग आते कहाँ से हैं और चले कहाँ जाते हैं?

आकाश ही क्यों, हमारे आसपास की तमाम चीज़ें रंगीन हैं। चीज़ें हमें दिखती हैं क्योंकि उनसे प्रकाश हमारी आँखों तक पहुँचता है। यह प्रकाश खुद वस्तु का भी हो सकता है या वह किसी अन्य चीज़ (जैसे सूरज) के प्रकाश को परावर्तित कर सकती है। सवाल यह है कि सूरज का प्रकाश तो सफेद होता है फिर उसे ये रंग कहाँ से मिलते हैं?

## न्यूटन की प्रिज़्म से निकले सात रंग

प्रकाश के रंगों के बारे में माना जाता था कि सूरज से आने वाला प्रकाश तो शुद्ध सफेद होता है। वह जिस चीज़ में से गुज़रता है या जिस चीज़ से टकराता है, उसकी कुछ अशुद्धियाँ प्रकाश में घुल जाती हैं और प्रकाश रंगीन हो जाता है।

इस मामले में सबसे पहले प्रयोग करने का श्रेय न्यूटन को जाता है। हाँ, वही गुरुत्वाकर्षण वाले न्यूटन। उन्होंने देखा कि किसी प्रिज़्म में से सूरज की रोशनी गुज़रे तो दूसरी तरफ कई रंग दिखने लगते हैं। यदि तुम्हारे पास प्रिज़्म हो, तो तुम भी करके देख लो। न हो, तो भी निराश होने की बात नहीं है। सूरज की रोशनी के रंग देखने के कई तरीके हैं।

खैर, न्यूटन ने जब प्रिज़्म से निकलते प्रकाश को देखा तो पाया कि उसमें कई रंग दिखने लगे हैं। उस समय सभी यही कहते थे कि प्रिज़्म काँच का बना है और काँच की अशुद्धियों के कारण रंग पैदा हुए हैं।

मगर इसे मानने में दो अड़चनें थीं। एक अड़चन तो तुम भी पहचान गए होगे। यदि प्रकाश का रंग काँच में अशुद्धि के कारण बदला है, तो इतने अलग-अलग रंग क्यों पैदा हुए? एक सिरे पर बैंगनी है, तो दूसरे सिरे पर लाल। काँच तो वही है, फिर इतने अलग-अलग रंग कहाँ से आए?

दूसरी अड़चन यह थी कि प्रकाश में ये रंग तभी आते थे जब काँच प्रिज़्म के आकार का हो। काँच के आयताकार गुटके पर प्रकाश का ऐसा प्रभाव नहीं होता था।

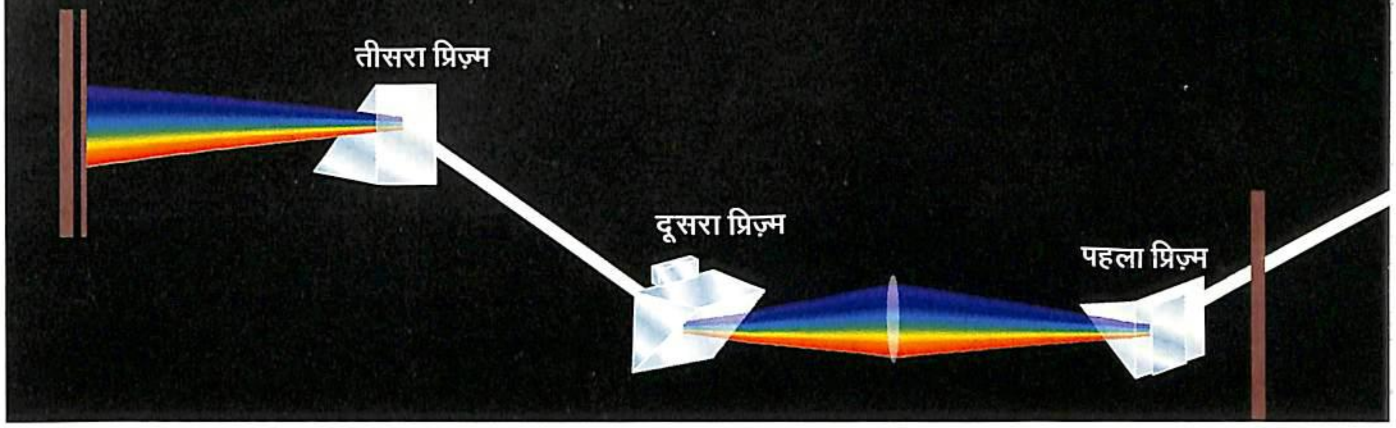
तो न्यूटन ने और प्रयोग किए। एक सरल-सा प्रयोग उन्होंने यह किया कि एक प्रिज़्म से तो रंग पैदा किए और फिर रंगों के रास्ते में एक प्रिज़्म उल्टा करके रख दिया। देखा कि रंग गायब हो गए। वापिस सादा प्रकाश मिल गया।

इस प्रयोग के आधार पर न्यूटन का निष्कर्ष था कि ये रंग प्रकाश में ही थे जिन्हें प्रिज़्म ने अलग-अलग कर दिया था। प्रिज़्म ने अपनी तरफ से कोई रंग नहीं मिलाए हैं। जब दूसरा प्रिज़्म उल्टा रखा गया तो उल्टा प्रभाव हुआ – रंग वापिस मिल गए और सफेद प्रकाश बन गया। यहाँ यह बता दूँ कि रंगों के इस विन्यास को वर्णक्रम कहते हैं। इसके आधार पर यह भी स्पष्ट हुआ कि सफेद प्रकाश में कई रंग होते हैं। वस्तु किस रंग की दिखती है यह इस बात पर निर्भर है कि वह कौन-कौन-से रंगों को सोख लेती है और कौन-कौन-से रंगों को जाने देती है।

## सात रंगों की आगे पड़ताल

खैर, बात आगे बढ़ाएँ। न्यूटन की इस खोज के बाद कई लोगों ने वर्णक्रम को लेकर खूब प्रयोग किए। खूब मेहनत की। और आज वर्णक्रम भौतिक, रासायनिक, जीव वैज्ञानिक तथा कई अन्य विषयों में शोध का एक प्रमुख साधन है। न्यूटन के बाद जिस व्यक्ति ने वर्णक्रम पर गहराई से ध्यान दिया, वे थे वोलेस्टन। 1802 में उन्होंने देखा कि विभिन्न रंगों के बीच कुछ काली रेखाएँ भी हैं। मगर उन्होंने यह समझा कि ये काली रेखाएँ रंगों के बीच की विभाजन रेखाएँ हैं, यानी वे रेखाएँ जहाँ एक रंग खत्म होता है और दूसरा शुरू होता है। इसलिए वोलेस्टन ने इन रेखाओं पर ज़्यादा ध्यान नहीं दिया। मगर जोसेफ फ्रानहॉफर ने इन्हीं रेखाओं को शोध का बिन्दु बना लिया। फ्रानहॉफर लेंस और प्रिज़्म बनाने में उस्ताद थे। अपने ही बनाए प्रिज़्म से उन्होंने 1814 में प्रयोग किए और सूर्य के प्रकाश के वर्णक्रम में 600 काली रेखाएँ खोज निकालीं। वोलेस्टन तो सिर्फ सात रेखाएँ देख पाए थे। फ्रानहॉफर ने इन रेखाओं की अच्छी तरह नाप-जोख

न्यूटन ने अपनी किताब *ऑप्टिक्स* में बताया था कि कैसे सूरज की सफेद रोशनी से सात रंग पैदा किए जा सकते हैं। और फिर कैसे इन सात रंगों को मिलाकर फिर से सफेद प्रकाश प्राप्त किया जा सकता है। उन्होंने सफेद प्रकाश को प्रिज़्म से गुज़ारा। प्रिज़्म ने इसे सात रंगों में अलग-अलग कर दिया। फिर एक लेंस से इन सात रंगों को एक दूसरे प्रिज़्म पर केन्द्रित किया गया। इस प्रिज़्म से निकला प्रकाश सफेद रंग का था। न्यूटन ने इस सफेद प्रकाश को एक तीसरे प्रिज़्म से गुज़ारा। प्रकाश फिर से सात रंगों में बँट गया।




करके देख लिया कि ये हमेशा वर्णक्रम में एक ही स्थान पर दिखती हैं।

फिर पचास सालों तक किसी ने इन रेखाओं पर खास ध्यान नहीं दिया। इस समय तक एक और वैज्ञानिक गुस्ताव किरचौफ एक अलग तरह के वर्णक्रम का अध्ययन कर रहे थे। वे करते यह थे कि किसी तत्व को लेकर उसे खूब गरम करते थे और उसका वर्णक्रम देखते थे।

उन्होंने पाया कि हर तत्व के वर्णक्रम में सारे रंग नहीं होते। हर तत्व के वर्णक्रम में कुछ खास रंग ही पाए जाते हैं। बाकी जगह काली रेखाएँ होती हैं। और यदि उसी तत्व की वाष्प को सूर्य की रोशनी के रास्ते में रख दिया जाए, तो वह वाष्प वही रंग सोख लेती है। यानी तब सूर्य के वर्णक्रम में उन जगहों पर काली रेखाएँ होंगी। किरचौफ ने सबसे बड़ी बात यह देखी कि हर तत्व के वर्णक्रम में ये रेखाएँ हमेशा एक-सी होती हैं और किसी भी अन्य तत्व के वर्णक्रम से भिन्न होती हैं। हर तत्व के फिंगरप्रिंट की तरह होता है उसका वर्णक्रम।

इसका मतलब हुआ कि यदि किसी अयस्क को इतना गर्म किया जाए कि वह प्रकाश देने लगे और उसका वर्णक्रम रिकॉर्ड किया जाए तो काफी कुछ पता चल सकता है। जैसे यदि उसके वर्णक्रम में कोई एक रेखा ऐसी है जो अयस्क में पहले से ज्ञात तत्वों से मेल नहीं खाती तो हम पक्के तौर पर कह सकेंगे कि उसमें कोई अज्ञात तत्व मौजूद है।

इस तरीके का उपयोग करते हुए किरचौफ ने दो नए तत्वों की खोज की थी – सीज़ियम और रुबिडियम।

किरचौफ ने वर्णक्रम के बारे में एक और महत्वपूर्ण बात कही थी जो आगे चलकर एक और तत्व की खोज में काम आई। किरचौफ ने कहा कि सूर्य के प्रकाश में जो काली रेखाएँ दिखती हैं, वे उन तत्वों के कारण हैं जो सूर्य के बाहरी वातावरण में मौजूद हैं। तो सूर्य के वर्णक्रम की रेखाओं के आधार पर पता चला कि वहाँ सोडियम व अन्य एक दर्जन तत्व मौजूद हैं।

## सूर्यग्रहण और वर्णक्रम का अध्ययन

मगर अभी एक और खोज होनी थी। 1868 के इस किस्से में भारत का ज़िक्र भी आता है। 1868 में पूर्ण सूर्यग्रहण हुआ था जो सिर्फ भारत में दिखा था। पूर्ण सूर्यग्रहण वह समय होता है जब सूर्य के उभारों के वर्णक्रम का अध्ययन किया जा सकता है। जब इसका अध्ययन किया गया तो उसमें कुछ ऐसी रेखाएँ दिखीं जो किसी भी ज्ञात तत्व की नहीं थीं। यह एक नया तत्व था जिसे हीलियम नाम दिया गया। यह हैरत की बात है कि हीलियम वह तत्व है जिसकी खोज पहले पृथ्वी पर नहीं बल्कि 15 करोड़ किलोमीटर दूर सूर्य पर हुई। आगे चलकर इसे पृथ्वी पर भी खोजा गया। उसकी कहानी फिर कभी!

# अपना वर्णक्रम या इन्द्रधनुष

आजकल वर्णक्रम देखना बहुत आसान हो गया है। सी.डी. का चिलका यदि दीवार पर डालो तो कई रंग दिखते हैं। यह तो हुई आसान बात। मगर इन रंगों को फिर से एक करके दिखाओ तो मज़ा आए।

वैसे प्रिज़्म मिलना भी कोई मुश्किल नहीं है। यदि दो प्रिज़्म मिल जाएँ तो पहले वर्णक्रम बनाना और फिर रंगों को मिलाकर एक कर देने का मज़ा लेना।

वर्णक्रम बनाने का एक और आसान तरीका है – एक दर्पण लो। एक परात या थाली में पानी भर लो और दर्पण को उसमें तिरछा करके डुबा दो। इस दर्पण पर धूप पड़ने दो। दर्पण का कोण थोड़ा बदल-बदलकर दीवार पर चिलका मारो। थोड़ी कोशिश करने से वर्णक्रम बन जाएगा।

बिल्कुल भी मेहनत न करना हो, तो बारिश के मौसम का इन्तज़ार करो। इन्द्र और सूर्य देवता की मेहरबानी हुई तो वर्णक्रम दिख ही जाएगा।

वैसे वर्णक्रम के साथ कुछ रोचक प्रयोग हो सकते हैं। जैसे वर्णक्रम बनाने से पहले रोशनी के मार्ग में कोई रंगीन चीज़ रखो। देखो कि ऐसा करने पर वर्णक्रम पर क्या असर पड़ता है – क्या कुछ रंग गायब हो जाते हैं? जैसे पत्ती का हरा रंग पानी में निकालकर एक परखनली में भर लो। प्रिज़्म पर डालने से पहले रोशनी को इस परखनली में रखे हरे घोल में से गुज़रने दो। देखो वर्णक्रम को क्या हुआ।

गपसप



शिवनारायण गौर

# सोनी जी की साइकिल

मध्यप्रदेश का एक ज़िला है होशंगाबाद। इसी ज़िले में एक गाँव है रोहना। सोनी जी लगभग 30 साल पहले इसी गाँव में रहते थे। एक आम इंसान। पर उनमें एक खास बात थी। उनका अपनी साइकिल के लिए प्रेम। सोनी जी पोस्टमैन थे। इसलिए दिनभर साइकिल पर उनका खूब घूमना होता था। इस अनोखे साइकिल प्रेम ने उन्हें आसपास के गाँवों में बहुत मशहूर बना दिया था।

सोनी जी जहाँ भी नज़र आ जाते लोग उन्हें दूर तक जाते देखते रहते। साइकिल से लम्बी यात्राएँ करना उनका शौक था। साइकिल साफ-सुथरी रखना एक ऐसा काम था जिसके लिए वे खुद को कष्ट देने से भी नहीं चूकते थे। साइकिल को धोना-पोंछना उनके रोज़ के कामों में शामिल था।

उनका साइकिल प्रेम यहीं खत्म नहीं होता। सड़क पर चलते हुए कहीं ज़रा भी पानी या ज़्यादा धूल आ जाती तो वे साइकिल को उठाकर चल पड़ते। हर रोज़ अपने गाँव की डामर वाली मुख्य सड़क से अन्दर की गली में घर तक वे साइकिल को उठाकर लाते-ले जाते। गाँव के लोगों के लिए वे भले ही अजूबा थे पर सोनी जी का साइकिल प्रेम इस सबकी कतई परवाह नहीं करता।

घर आकर भी साइकिल ज़मीन पर न खड़ी होती। सोनी जी का मानना था कि इससे टायर खराब हो जाते हैं। उन्होंने अपने घर की दीवार पर बड़ी-बड़ी दो खूँटियाँ लगा रखी थीं। साइकिल जब तक घर पर होती, खूँटी पर टँगी रहती। उनके घर के सामने से गुज़रने वाला हर शख्स उनकी साइकिल को देखते हुए ही निकलना चाहता। गाँव में लोग अपने यहाँ आए मेहमानों को सोनी जी की सायकल ज़रूर दिखाते। इससे सोनी जी और मेज़बान दोनों का सीना गर्व से फूल जाता।

सतीनाथ षडंगी

# "ऊँचे" लोगों की दुनिया







चित्रः कनक शशि

उमा सुधीर/हिमांशु

# क्या चाँद पर चौके-छक्के मारना आसान होगा?

*चकमक* के अप्रैल माह के अंक में हमने "गर्मियों की छुट्टियाँ इस बार चाँद पर" के अन्त में एक सवाल पूछा था – क्या चाँद फुटबॉल, क्रिकेट, ऊँची-लम्बी कूद लगाने के लिहाज़ से बढ़िया जगह होगी? प्रस्तुत है इसका जवाबः

इस सवाल पर कई तरह से विचार कर सकते हैं। चौके-छक्के के बारे में सोचने से पहले ही एक सवाल आकर खड़ा हो जाता है – क्या अन्तरिक्ष की भारी-भरकम पोशाक पहनकर क्रिकेट खेला भी जा सकेगा? चलो थोड़ी देर के लिए मान लें कि हम ऐसी पोशाक बना लेंगे जो बहुत ही हल्की होगी और कभी हम चाँद पर क्रिकेट मैच खेल पाएँगे। अगर ऐसा हुआ तो क्या वहाँ चौके-छक्के मारना आसान होगा?



मान लो हमें गेंद को सिधाई में ऊपर फेंकना है। पृथ्वी पर तो यह एक ऊँचाई तक जाएगी और फिर नीचे आ जाएगी। इसे यूँ भी कह सकते हैं कि गुरुत्वाकर्षण बल के कारण यह तब तक ऊपर जाएगी जब तक इसके ऊपर जाने की गति शून्य नहीं हो जाती। फिर इसी गुरुत्वाकर्षण बल के कारण यह तेज़ी से नीचे भी आएगी। चाँद पर अगर हम सिधाई में गेंद फेंके तो क्या होगा? (चित्र देखो) चाँद पर गुरुत्वाकर्षण बल पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल का 1/6 है। यानी वहाँ गेंद को ऊपर जाने से रोकने वाला कारक गुरुत्वाकर्षण बल कम है इसलिए गेंद वहाँ पर ज़्यादा ऊँचाई तक जाएगी। गेंद के ऊपर जाने की गति पृथ्वी की अपेक्षा ज़्यादा देर बाद शून्य होगी। इससे दो बातें समझ में आती हैं – एक तो बराबर बल लगाकर फेंकने पर गेंद चाँद पर 6 गुना ज़्यादा ऊँचाई तक जाएगी तथा दूसरे, उसे ऊपर जाने में व वापिस आने में पृथ्वी की अपेक्षा 6 गुना ज़्यादा समय लगेगा।

अगर हम ज़मीन पर गेंद को तेज़ी से लुढ़काएँ तो? पृथ्वी पर गेंद को आगे जाने से रोकने के लिए दो कारक ज़िम्मेदार होंगे। एक, ज़मीन का घर्षण (रगड़), दूसरा, हवा का प्रतिरोध। हवा के प्रतिरोध का असर बहुत कम होगा पर फिर भी वह गेंद की गति को प्रभावित करेगा। चाँद पर हवा के न होने से यह प्रतिरोध शून्य होगा। यानी अगर हम समान बल से गेंद लुढ़काते हैं तो चाँद पर गेंद पृथ्वी की तुलना में ज़्यादा दूर तक लुढ़क जाएगी।

अब यह तो तुम भी मानोगे कि इसकी सम्भावना बहुत ही कम होगी कि बल्लेबाज़ हिट मारे और गेंद सीधे ऊपर की ओर जाए। बॉल किसी न किसी कोण पर ही आगे जाएगी। अगर पृथ्वी पर यह शॉट मारा जाए तो बॉल पर दो बातों का प्रभाव पड़ेगा। एक है गुरुत्वाकर्षण बल और दूसरा हवा का प्रतिरोध। इन दो बातों पर निर्भर करेगा कि बॉल कितनी दूर जाएगी। अगर चाँद पर बॉल को इसी बल से और इसी कोण पर हिट किया जाए तो वह ज़्यादा दूर तक जाएगी। इसके कारण हैं हवा के प्रतिरोध का न होना और कम गुरुत्वाकर्षण बल। चूँकि बॉल ज़्यादा ऊँचाई तक जाएगी और हवा में ज़्यादा देर तक रहेगी इसलिए वो ज़्यादा दूर भी जाएगी।

जारी पेज 17 पर



चित्रः जितेन्द्र ठाकुर

**मेरी पसन्दीदा रचना**

**इस कॉलम में हर बार तुम विभिन्न लोगों की पसन्दीदा (लेख/कविताएँ/कहानियाँ/नाटक आदि) रचनाएँ पढ़ोगे। इस सिलसिले की शुरुआत हम अरविन्द गुप्ता और दिलीप चिंचालकर के एक पसन्दीदा लेख से कर रहे हैं।**

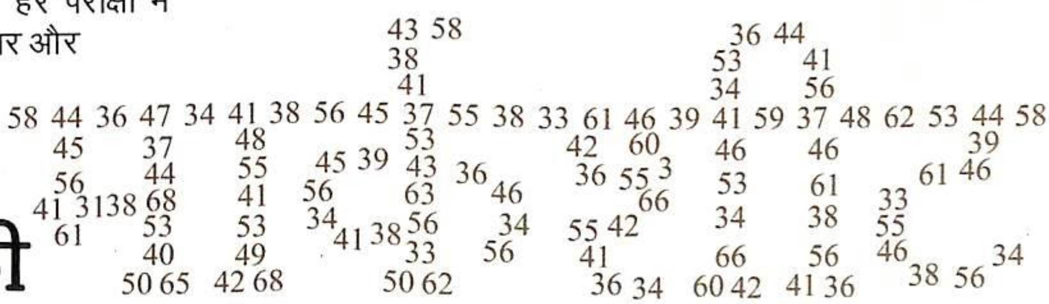
प्रकृति में हर एक की कुछ न कुछ खूबियाँ हैं। तितली के पास खूबसूरत रंग हैं, शेर के पास ताकत तो मनुष्य के पास दिमाग है। दिमाग सोचने और संवेदनशील बनने के लिए है। दिमाग होने का मतलब पढ़ाई में अच्छा होना नहीं है। यदि ऐसा होता तो कौन दिमाग वाला माना जाता – वो जो सिर्फ रटकर अच्छे अंक ले आता है, या वो जो कम अंक लाकर भी अपने पढ़े हुए का इस्तेमाल सबकी भलाई के लिए करता है, जैसा छात्र मोहनदास ने बड़े होकर किया। यही बात थोड़े अलग ढंग से अल्बर्ट आइंसटीन ने की थी। परीक्षा में पहला स्थान पाना ही सब कुछ होता तो सन् 1887 का बॉम्बे यूनीवर्सिटी से दूसरी श्रेणी में पास हुआ छात्र आज हमारा राष्ट्र पिता न होता।

इन दिनों स्कूल बन्द हैं। तुम्हारे पास फुर्सत भी है। अभी-अभी हम अच्छे-बुरे नम्बरों के अनुभव से गुज़रे हैं। जो पास नहीं हो पाए, जिन्हें सप्लीमेण्ट्री आई हो या जो पास हो गए हैं, सभी को यह लेख पढ़कर यह सवाल ज़रूर पूछना चाहिए कि क्या मैरिट लिस्ट में आना ही सब कुछ है? दूसरों को समझने वाला उनके काम आने वाला इंसान बनना ही सब कुछ है। यह नहीं तो शत-प्रतिशत अंक भी कुछ नहीं।

*दिलीप चिंचालकर*

रामचन्द्र गुहा

# महात्मा गाँधी की



कॉलेज के दिनों में एक महान व्यक्ति की आत्मकथा मेरे हाथ लगी। उनका कैरियर कमाल का था। वे दिल्ली विश्वविद्यालय के कुलपति, रिज़र्व बैंक के गवर्नर और भारत सरकार के वित्त मंत्री रह चुके थे। मुझे मज़ेदार लगा कि किताब में जितने पन्नों में उन्होंने केन्द्रीय बैंक में अपने काम, राष्ट्रीय बजट को बनाने-सुधारने से जुड़े अपने अनुभव साझा किए उतने ही पन्नों में स्कूल, कॉलेज के अपने उम्दा प्रदर्शन का भी बखान किया था। हर परीक्षा में 96 प्रतिशत से ज़्यादा नम्बर और कॉलेज में उनका बनाया रिकॉर्ड तो सालों कर कायम रहा। बाद के दिनों में कई और आत्मकथाएँ पढ़ीं। पता चला कि यह कोई अजूबा नहीं है। सभी लोग स्कूली परीक्षाओं में अपनी सफलताओं को बहुत ज़्यादा अहमियत देते हैं।



मोहनदास करमचन्द गाँधी

लेकिन फिर मेरे हाथ लगी एक अनूठी आत्मकथा – मोहनदास करमचन्द गाँधी की आत्मकथा। इसमें महात्मा एक जगह कहते हैं, "हाई स्कूल में मुझे मूर्ख नहीं समझा जाता था।" आगे चलकर वे एक समय में संस्कृत और गणित में आई दिक्कतों का भी ज़िक्र करते हैं।

अपनी आत्मकथा में स्कूली जीवन के बारे में गाँधी ने ज़्यादा कुछ नहीं लिखा है। लेकिन 1965 में छपी एक किताब – *महात्मा गाँधी एज़ ए स्टूडेंट* में इस पर विस्तार से लिखा है। इस किताब के लेखक जे. एम. उपाध्याय हैं। वे राजकोट के उसी हाई स्कूल के प्राचार्य थे जहाँ महात्मा गाँधी ने सात साल पढ़ाई की थी।

इस 74 पन्नों की किताब में बहुत-बहुत कुछ है। इस स्कूल में आने से पहले बालक गाँधी कई स्कूल बदल चुके थे। अक्सर कक्षा में उनकी उपस्थिति बहुत कम रहती। तीसरी में तो वे कुल 238 दिनों में से 110 दिन ही स्कूल गए। सालाना परीक्षाओं में उन्हें 45 से 55 प्रतिशत के बीच नम्बर मिलते थे। छोटी कक्षाओं में त्रिभुवन भट्ट के हाथों उनकी पिटाई होना आम बात थी। त्रिभुवन बड़े सख्त सख्त शिक्षक थे। बाद के समय में त्रिभुवन पहले बाबू फिर

और बाद में राजकोट राज्य के मुख्य मंत्री बने। गाँधी जी के बड़े भाई करसनदास का पढ़ाई का रिकॉर्ड काफी खराब था। बस यही एक वजह थी जिसने गाँधी जी के दोस्तों के बीच उनकी साख बना दी। एक कक्षा में दो साल बिताने से करसन अपने छोटे भाई की कक्षा में आ गए थे।

मिडिल स्कूल तक आते-आते हालात और खराब हो गए थे। कक्षा में गाँधी जी की उपस्थिति और कम हो गई थी। कारण थे – बीमार पिता और नई-नवेली दुलहन। लेकिन जब उनसे एक साल और उसी कक्षा में रहने को कहा गया तो पहली बार पढ़ाई को लेकर वे गम्भीर हुए। नतीजा यह रहा कि उन्हें 66.5 प्रतिशत के साथ कक्षा में आठवाँ स्थान मिला। यह आलम हाई स्कूल तक कायम रहा। वैसे इस वक्त कक्षा के बाहर के उनके जीवन में काफी उठा-पटक चल रही थी। नया-नया पति बनना, माँसाहार चखना, करसनदास का कर्ज़ चुकाने के लिए घर के सोने को बेचने की असफल कोशिश करना। ताज्जुब यह कि बावजूद इसके कक्षा में उनकी उपस्थिति 100 प्रतिशत रही। इस साल 60 प्रतिशत नम्बर के साथ कक्षा में उनका चौथा स्थान रहा। लेखक के शब्दों में, "अब वे औसत छात्र नहीं रह गए थे।"

लेकिन अभी तो इस कथन की जाँच होना बाकी थी। 1887 में मैट्रिक की परीक्षा देने मोहनदास रेल से पहली बार अहमदाबाद गए। इस परीक्षा के कुछ आँकड़े हैं:

परीक्षा देने वाले कुल छात्र: 3097

सफल छात्र: 799

गाँधी का स्थान: 404

गाँधी को प्राप्त अंक:

| | | |
|---|---|---|
| अँग्रेज़ी | : | 89/200 |
| गुजराती | : | 45.5/100 |
| गणित | : | 59/175 |
| सामान्य ज्ञान: | | 54/150 |

कुल 625 में से 247.5 नम्बर (40 प्रतिशत)

यानी एक बार फिर मोहनदास औसत छात्रों में शामिल हो गए थे।

*महात्मा गाँधी एज़ ए स्टूडेंट* किताब को लेखक बिरादरी और गुजराती लोग काफी इज़्ज़त देते हैं। इसमें अंक तालिकाओं के अलावा बहुत कुछ है। इससे पता चलता है कि परीक्षाओं में बेहद सामान्य प्रदर्शन के बावजूद उनके मिडिल स्कूल के शिक्षक ने उनके व्यवहार को "बहुत अच्छा" पाया जबकि अच्छे नम्बर लाने वाले छात्रों के व्यवहार को केवल "अच्छे" की श्रेणी में रखा। लेखक ने किताब में गाँधीजी की मैट्रिक की अँग्रेज़ी परीक्षा का पर्चा भी दिया है। इसमें 45 नम्बर के प्रश्न में "खुशमिजाज़ी के फायदे" विषय पर एक लेख लिखना था। क्या यह सम्भव नहीं कि इस के जवाब ने गाँधी जी को एक ऐसा राजनीतिज्ञ बनने को प्रेरित किया हो जिसने किसी भी परिस्थिति में कभी भी आपा नहीं खोया?



अल्बर्ट आइंस्टाइन

लेखक ने उन सब बातों को भी इस किताब में जगह दी है जिनकी वजह से गाँधी जी में सभी धर्मों के प्रति सम्मान की भावना पैदा हुई होगी। हाईस्कूल के दिनों में गाँधी जी का सबसे अच्छा दोस्त एक मुस्लमान लड़का था, जबकि उनके हेडमास्टर पारसी थे। वे जिस स्कूल में पढ़ते थे, उसकी इमारत जूनागढ़ के नवाब द्वारा दान में दिए गए 63 हज़ार रुपए से बनी थी। अपनी स्कूली पढ़ाई के आखरी दिनों में गाँधी जी को ज़्यादा नम्बर मिलने लगे थे। इस कारण उनको छात्रवृत्ति दी जाने लगी थी। उन्हें हर महीने 10 रुपए मिलते थे। यह छात्रवृत्ति काठियावाड़ के दो बड़े लोगों के नाम पर शुरू की गई थी। इनमें से एक हिन्दू था तो दूसरा मुसलमान। इस तरह महात्मा गाँधी को स्कूल में ही इतने धर्म के लोगों का साथ मिला।

हो सकता है कि कुछ लोग अंकतालिकाओं को बहुत ज़रूरी मानें। उन्हें मैं एक और महान व्यक्ति के बारे में बताना चाहूँगा। वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन की जीवनी से पता चलता है कि बचपन में उनकी किसी भी बात से नहीं लगता था कि आगे चलकर वे एक बहुत बड़े वैज्ञानिक बनेंगे। आइंस्टाइन नौ साल की उम्र में ही ठीक से बोलना सीख पाए थे जबकि आम बच्चे दो-ढाई साल में बोलने लगते हैं। जब आइंस्टाइन के पिता ने प्राथमिक स्कूल के हेडमास्टर से पूछा कि उनके बेटे के लिए कौन-सा कैरियर ठीक रहेगा। हेडमास्टर का जवाब था, "इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। वो किसी भी काम में सफल नहीं हो सकता।" बाद में म्यूनिख में आइंस्टाइन अपना

डिप्लोमा पूरा नहीं कर पाए। ज्यूरिख में यूनिवर्सिटी की प्रवेश-परीक्षा में भी वे पास नहीं हुए। असल में दिक्कत यह थी कि गणित में तो वे बेहद होशियार थे, लेकिन अन्य विषयों जैसे भाषा विज्ञान, जन्तु विज्ञान, वनस्पति विज्ञान में वे पास होने लायक अंक भी नहीं ला पाते थे।

यह बीसवीं सदी की उन दो हस्तियों का स्कूली जीवन का हाल है जिन्हें आज महान, बुद्धिमान और बेहद प्रभावशाली माना जाता है।

बंशीलाल परमार

# गण्या

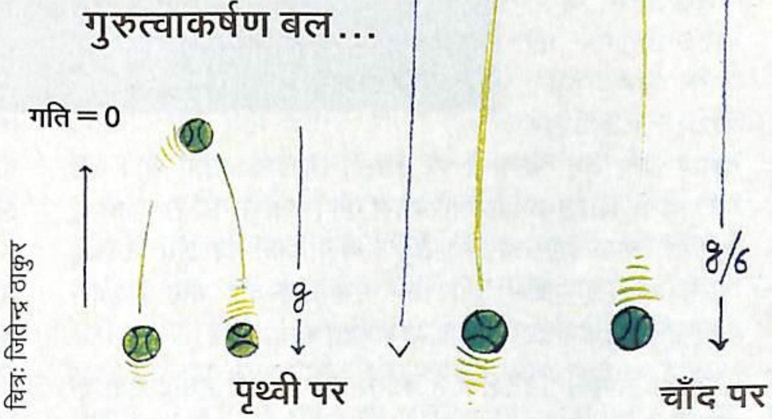
भोजन और चित्र दोनों को एक साथ बोलो तो लगता है कुछ गड़बड़ है। इन दो चीज़ों का क्या मेल? पर गण्या में ऐसा ही होता है। गण्या मालवा और सौंधवाड़ अंचल का एक लजीज भोजन है। इसे चित्रात्मक भोजन भी कह सकते हैं।



## इसे चखना चाहोगे?

गण्या बनाने के लिए गेंहू के आटे को गुड़ के पानी में सानते हैं। फिर इसकी लोइयाँ बनाकर एक लकड़ी के साँचे में दबाते हैं। लकड़ी के बने इस साँचे में लकड़ी के दो पट होते हैं। जिनमें किसी फूल की आकृति खुदी होती है। लोई को साँचे में दबाने पर उसमें फूल उभर आते हैं। इस लोई को फिर तेल में तल लिया जाता है। इस अंचल में नवरात्रा समाप्ति पर यानी नवमीं व दशहरे की पूजा के समय गण्ये बनाए जाते हैं।

## क्या चाँद पर चौके-छक्के मारना आसान होगा?...




चित्र: जितेन्द्र ठाकुर

अब देखते हैं कि ऊँची और लम्बी कूद में क्या स्थितियाँ होंगी? बॉल ही की तरह चाँद पर कूदने पर आदमी भी ज़्यादा ऊँचाई तक (6 गुना) और ज़्यादा दूर तक (6 गुना) जाएगा। यानी चाँद पर खेल हों तो कई सारे ऑलम्पिक रिकॉर्ड टूट सकते हैं। तुम्हें क्या लगता है फुटबॉल या हॉकी में गोल भी दनादन होंगे?

हमें लगता है चाँद पर फुटबॉल खेलने में कोई खास सहूलियत नहीं होगी। क्योंकि सबसे पहले तो वहाँ पर कम बल लगा कर किक लगाना सीखना होगा, जिससे बॉल सीधे गोल में जाए न कि ऊपर से उसे पार कर जाए।

अप्रैल अंक की चित्र पहेली के हल

| | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| बाँ | | द | वा | त | | | जा | ला |
| सु | रा | ही | | मा | चि | स | | ल |
| री | | | शी | शा | | र | | टे |
| | सा | | | | चाँ | क | | न |
| श | त | रं | ज | | | स | जा | |
| र्ट | | | ग | ग | न | | र | थ |
| | क | ली | | | य | | | न |
| जू | | ची | टी | | न | थ | नी | |
| ही | रा | | म | क्खी | | | ला | ठी |

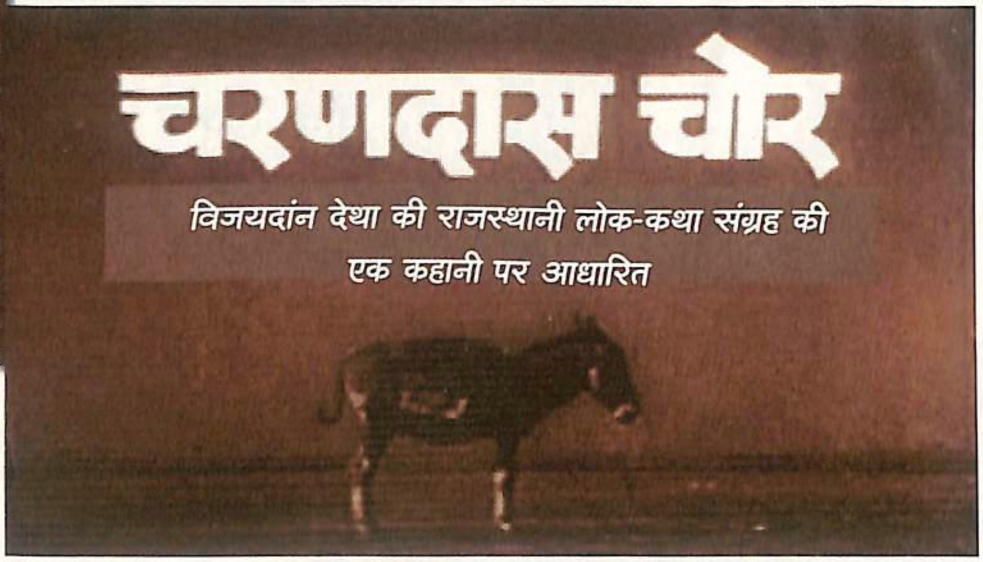
सिनेमा

एक यादगार फिल्म

सुनील मिश्र

# चरणदास चोर

*विजयदांन देथा की राजस्थानी लोक-कथा संग्रह की एक कहानी पर आधारित*



बचपन में देखी इस फिल्म को कभी नहीं भुला पाया। अक्सर गणेश और दुर्गा उत्सवों पर फिल्में दिखाई जाती थीं। यह बात होगी 1976-77 के आसपास की। उस समय *सत्यकाम*, *जागृति*, *चरणदास चोर* जैसी फिल्में सड़कों पर खूब दिखाई जाती थीं। चरणदास चोर को मैंने कई-कई बार सड़क-मैदान में बैठकर देखा। और वो हमेशा याद रही।

इस फिल्म के निदेशक हैं श्याम बेनेगल। वे हमारे देश के एक बड़े फिल्मकार माने जाते हैं। चरणदास चोर एक चोर की कहानी है। एक बार वह पुलिस से बचने एक साधु के दरबार में पहुँचता है। वहीं साधु को चरणदास गुरू बनाता है और पाँच वचन देता है। इनमें से चार वचन हैं – सोने-चाँदी की थाली में खाना नहीं खाऊँगा; हाथी-घोड़े के जुलूस में सवारी नहीं करूँगा; कोई रानी शादी करना चाहेगी तो इंकार कर दूँगा; कोई राजा बनाना चाहेगा तो नहीं बनूँगा। ये चार वचन वह यह सोच कर देता है कि उसके जीवन में ऐसे अवसर कभी नहीं आएँगे ही नहीं। साधु चरणदास चोर की बातों पर हँसता है और कहता है कि ये बातें तो तेरे जीवन में कहाँ होने वाली हैं? मेरी तरफ से एक वचन ले कि तू चोरी करना छोड़ देना। इस पर चरणदास कहता है कि गुरूदेव वो तो मेरा धन्धा है। यदि चोरी छोड़ दूँगा तो खाऊँगा क्या? फिर कुछ सोचकर वो हमेशा सच बोलने का पाँचवाँ वचन देता है।

अब चरणदास चोर सच बोलकर अपनी यात्रा शुरू करता है। उसके साथ उसका एक शार्गिद बुद्धू धोबी भी है। दोनों मिलकर गाँव भर में खूब चोरियाँ करते हैं और लोगों को बेवकूफ बनाते हैं। वे अमीरों से लूटकर गरीबों में बाँटते हैं। उनका जीवन इसी तरह चलता है। एक बार वे राजमहल का रुख करते हैं। बुद्धू धोबी की मदद से चरणदास राजमहल में वेश बदलकर जाता है और शाही खज़ाने से अपनी ज़रूरत की मुताबिक पाँच स्वर्ण मुद्राएँ चुरा लेता है। इसी बीच राजमहल का कर्मचारी शाही खज़ाने से पाँच मुद्राएँ चुराकर अपने पास रख लेता है। इसका इल्ज़ाम भी वह चरणदास पर लगाता है। आखिरकार चरणदास को राजमहल में बुलाया जाता है। वहाँ वह सहजता से पाँच स्वर्ण मुद्राएँ चुराना कबूल कर लेता है। सच्चाई सामने आती है और पाँच मुद्राएँ चुराने वाले कर्मचारी को सज़ा हो जाती है।

रानी केलावती चरणदास चोर की सच्चाई से प्रभावित होती है। वो उसको जुलूस भेजकर बुलाती है, सोने-चाँदी की थाली में भोजन देती है, राजा बनाना चाहती है और आखिर में शादी का प्रस्ताव रखती है। चरणदास ने तो इन सभी चीज़ों को न करने का वचन लिया है। इसीलिए वह सारी बातों को ठुकरा देता है। अब रानी गुस्से में आकर चरणदास चोर को मार डालने का हुक्म देती है। सिपाही रानी के हुक्म का पालन करते हैं। चरणदास चोर को मार दिया जाता है। मरने के बाद चरणदास यमराज के दरबार में पहुँचता है। उसके पीछे-पीछे बुद्धू धोबी भी। बुद्धू चित्रगुप्त के बहीखाते में





## *चरणदास* चोर के बारे में श्याम बेनेगल

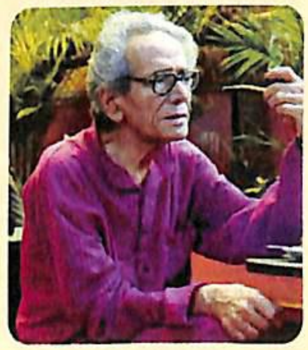
*चरणदास चोर*, मेरी शुरुआती फिल्मों में से एक थी। बड़ी दिलचस्प फिल्म है। अविभाजित मध्यप्रदेश और आज के छत्तीसगढ़ में मैंने बनाई थी। शमा ज़ैदी और हबीब तनवीर ने इस फिल्म के निर्माण में बड़ा सहयोग किया था। तुमको आश्चर्य होगा यह जानकर कि यह फिल्म मैंने लगभग एक लाख रुपए में बना ली थी। *बाल चित्र समिति* वाले चाहते थे कि मैं उन्हें दस-पन्द्रह मिनट की लघु फिल्म बनाकर दूँ। मगर मैंने उनसे कहा कि यह फिल्म इतनी छोटी बन ही नहीं सकती। उन्होंने कहा कि बजट सीमित है तो मैंने कहा कि इसी बजट में बनेगी मगर बड़ी फिल्म होगी।

इस फिल्म को बड़ी तैयारियों के साथ बनाया गया था। छत्तीसगढ़ के नाचा कलाकारों के तमाम ग्रुप हमने बुला लिए थे भिलाई, राजनान्दगाँव से। वहाँ की लोकनृत्य और लोकगायन विधा को भी इस फिल्म में शामिल किया गया। कुछ कलाकारों को चुनकर इस फिल्म के लिए तैयार किया गया। सबने बहुत अच्छा काम किया। यह फिल्म बहुत कम समय में बन गई, शायद एक महीने के भीतर ही।

लालूराम इसमें चरणदास चोर बने थे। वे नाचा के श्रेष्ठ कलाकार थे।







## *चरणदास* चोर के बारे में हबीब तनवीर

मैं श्याम बेनेगल को एक चोर की राजस्थानी कहानी के आधार पर एक नाटक बनाने के बारे में बता रहा था। कहानी सुनकर उन्होंने फैसला किया कि वे इस पर एक फिल्म बनाएँगे। श्याम ने मुझसे स्क्रीन प्ले लिखने के लिए कहा। फिल्म वह बना रहे थे *चिल्ड्रन्स फिल्म सोसाइटी* की तरफ से बच्चों के लिए! चुनाँचे उन्हें कहानी का अन्त पसन्द नहीं था। चोर के मरने पर वे फिल्म खत्म नहीं करना चाहते थे। उनका कहना था कि बच्चों के लिए कहानी का यह अन्त अच्छा नहीं है। उनका कहना था कि चोर के मरने के बाद परलोक का एक सीन और लिखो ताकि इस दुखद अन्त की बजाय चोर की कहानी आखिर तक एक प्रहसन बनी रहे। हालाँकि बच्चों के बारे में मेरी राय जुदा थी। मैंने परलोक का सीन भी लिख लिया – मरने के बाद चरणदास चित्रगुप्त के सामने पहुँचता है साथ में बुद्धू भी है। बुद्धू चुपके से उसके खाते से अपने नाम का पन्ना फाड़ देता है। जब चित्रगुप्त अपने खाते का पन्ना गायब देखकर चरणदास पर शक की नज़र डालते हैं तो बुद्धू उस कागज़ को पान की तरह लपेटकर मुँह में डाल लेता है। लाचार चित्रगुप्त पूछते हैं, "यमराज ने तुमको क्यों मारा? तुम्हारा नाम तो मेरे खाते में नहीं है।" इतने में भैंसे पर सवार यमराज खुद आ जाते हैं। मौका देखकर चरणदास और बुद्धू भैंसे पर चढ़कर चम्पत हो जाते हैं। शाम के बादल मँडराते नज़र आते है। कमेंटरी के शब्द जो सुनने में आते हैं वे ये हैं: *बच्चो, वह जो बादल तुम देख रहे हो वह दरअसल चरणदास चोर है जो यमराज के भैंसे पर सवार भागा जा रहा है। उसके पीछे असमानी पुलिस है जो अब तक उसका पीछा कर रही है।*

हेराफेरी कर और ऐसी चाल चलता है कि उसे वापस ज़मीन पर भेज दिया जाता है। उसका हाथ पकड़े चरणदास भी ज़मीन पर आ जाता है। दोनों फिर अपने काम में जुट जाते हैं।

यह फिल्म एक राजस्थानी लोककथा को आधार बनाकर रची गई है। इसके लेखक विजयदांन देथा हैं। प्रख्यात नाटककार हबीब तनवीर ने इस कहानी को छत्तीसगढ़ी बोली में रूपान्तरित किया है। छत्तीसगढ़ी लोक कलाकारों के साथ इस पर बना नाटक पिछले चालीस सालों से खेला जा रहा है। चोरी और सच्चाई दोनों में गहरा विरोधाभास है मगर इस फिल्म में हम दोनों ही चीज़ों को साथ-साथ देखते हैं।

सभी फोटो: साभार *बाल चित्र समिति*

वरुण

# ई है मुम्बई नगरिया



वरुण ग्रोवर मुम्बई में रहते हैं। उन्होंने *ग्रेट इण्डियन कॉमेडी*, *ऐसी की तैसी*, *रणवीर* जैसे कई धारावाहिकों की पटकथा व संवाद लिखे हैं। फिलहाल वे *ज़ोर लगाके हैय्या* नाम की एक फिल्म के संवाद लिख रहे हैं। वरुण शहरों के खास अन्दाज़ को कैमरे में उतारने का शौक रखते हैं। उनके कैमरे से मुम्बई की कुछ झलकियाँ पेश हैं ...



दुकानदार सोया, खिलौनों का पहरा




शीर्षक ..............................



सड़क बनी ताल,
उसपे बालीबॉल!




शीर्षक ......................................



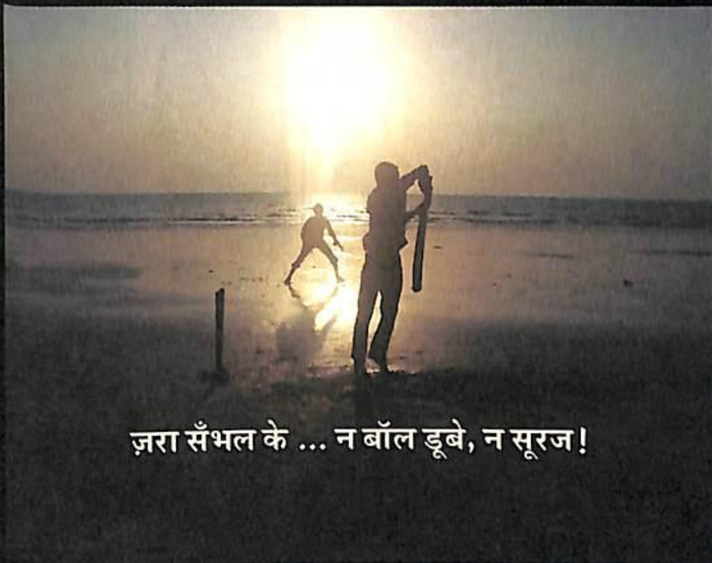

शीर्षक ......................................



रेडियो की आवाज़ ऊँची कर दूँ
ताकि नीचे तक सुनाई दे।




अक्खा धंधे का फण्डा, कभी गुब्बारा कभी झण्डा



ज़रा सँभल के ... न बॉल डूबे, न सूरज!



मुम्बई में फैशन स्ट्रीट पर
गोपाल कृष्ण गोखले का स्मारक

# मुम्बई गीत

सुनो रे भैया लाल-बुझक्कड़,
शहर ये कैसा अक्कड़-बक्कड़...
चलता जाए-चलता जाए,
इसके पाँव हमेशा चक्कर...
"बोले तो, मामू" भाषा ऐसी,
हर मुश्किल में आशा ऐसी,
टेंशन नक्को लेने का रे,
भले लाइफ भी मारे टक्कर!
सुनो रे भैया लाल-बुझक्कड़...
रंग बहुत हैं, ढंग बहुत हैं,
मुम्बई के परसंग बहुत हैं...
एक है किस्सा आम-आदमी,
जिसके साथ न सदा चाँदनी,
पर उसके भी हिस्से का है,
नमक समन्दर हवा की शक्कर!
सुनो रे भैया लाल-बुझक्कड़...
और मुम्बई की मस्ती देखो,
बड़ी-बड़ी सब हस्ती देखो,
पर उनसे भी बड़ा शहर है,
बड़ी प्यास है, बड़ी लहर है,
प्यास लगे तो सब इक जैसे,
क्या राजा, क्या पीर, क्या फक्कड़...
सुनो रे भैया लाल-बुझक्कड़...

*वरुण ग्रोवर*



अमिताभ बच्चन के घर के सामने उनके "दर्शन" करने उमड़ी भीड़

शीर्षक लिखो, इनाम पाओ।
यहाँ तीन ऐसी फोटो हैं जिनका कोई शीर्षक नहीं है। क्या तुम्हें इनका कोई चटपटा शीर्षक सूझ रहा है?



भीड़ों के बस रेले यहाँ, बोलो कोई खेले कहाँ

# माँ की डायरी

हरजीत

## अस्सू और कूनी की कहानियाँ

13.3.97

बहुत ठण्ड थी। अस्सू और कूनी को मैंने कमरे के अन्दर किताबों के साथ निग्घा (गरम कपड़े पहनाकर) करके बिठाया था। खुद थोड़ी देर बाद उठकर रसोई में उनके लिए कुछ खाने को बनाने चली गई। कूनी को इतनी देर में सुसु आई तो मैंने रसोई से ही अस्सू को आवाज़ लगाई, "भाग के मग ले आ और कूनी को सुसु करवा दे।"



अस्सू जब कूनी को सुसु करवा रहा था तो कूनी बोला, "मेरी खासियत यह है कि मैं सुसु पजामी में नहीं करता, चाहे कितनी ज़ोर से ही क्यों ना आ रही हो।"



14.3.97

मेरी परान्दी (काले धागों की चोटी) की गुत्त (चोटी) बनाकर अपनी गर्दन में फँसाकर ऐसे खड़ा हो जाता है अस्सू जैसे उसने अपने बालों की गुत्त आगे को कर रखी हो और प्यार से आवाज़ निकालता है, "ड डा...।"



खाना खाने के बाद, चुल्ली-वुल्ली करके हम सब यानी मैं, अस्सू और कूनी छज्जे पर सैर कर रहे थे रोज़ की तरह। पिछले रोज़ जब हम इसी तरह सैर कर रहे थे तो बेध्यानी में मेरे पाँव के नीचे आकर एक चींटा कुचला गया। यह चींटा थोड़ा-सा पारदर्शी हल्के पीले रंग वाला था। कूनी ने आज सैर करते वक्त फिर से एक वैसा ही चींटा देखा तो ज़मीन पर बिलकुल चींटे के साथ सट के लेट गया और बोला, "माँ, इधर से मत आना। ध्यान से सैर करना नहीं तो आज फिर तेरे पैर के नीचे आकर यह चींटा भी ना मर जाए।" मैंने कहा, "कूनी, क्यों ना मैं इसे रास्ते से उठाकर एक तरफ कर दूँ?" तो कूनी थोड़ा-सा घबरा गया। बोला, "नहीं, नहीं माँ, अगर इसको धीरे-से भी उठाओ तो भी ये पिचक जाते हैं, बहुत नाज़ुक होते हैं ये। वैसे भी अगर हम इन्हें उठा के कहीं और रख देंगे तो इन्हें अपने घर जाने का रास्ता कैसे पता चलेगा?" जितनी देर हम सैर करते रहे उतनी देर तक कूनी अपने दोनों हाथों की महफ़ूज़ कटोरी-सी बनाकर उस चींटे के आसपास रखता रहा। इस तरह उस शाम हमने उस भूरे चींटे के हिसाब से रास्ता बदलकर सैर की।

### हरजीत

हरजीत लेखक हैं, चित्रकार हैं, कवि हैं। वे धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश में पिछले 22 सालों से रह रही हैं। रोज़मर्रा के जीवन की छोटी-छोटी बातों से वे कहानियाँ रच लेती हैं। उनके चित्र बनाती हैं। उनकी ये सरल कहानियाँ और उनके छरहरे-से चित्र बहुत आकर्षित करते हैं। उनके दो बेटे हैं – अस्सू (तेन्ज़िन आनन्दा), कूनी (तेन्ज़िन कर्मा)।

अस्सू व कूनी कभी स्कूल नहीं गए। उन्होंने अपनी पढ़ाई माँ के साथ मिलकर घर पर ही की। इस दौरान वे मिलकर कहानियाँ बुनते और चित्र बनाते। आसपास के बारे में बातचीत करते। मिलकर देखते, गुनते और मिलकर समझते। अस्सू और कूनी की रचनाएँ तुमने पिछले अंक में पढ़ी होंगी। हरजीत ने अपने दोनों बेटों के एक-एक दिन को लिखा तथा चित्रित किया है। यानी अस्सू, कूनी के बचपन की छोटी से छोटी बात भी तुम्हें हरजीत की डायरी में मिल जाएगी। इसी डायरी का एक पन्ना तुम भी पढ़ो।

इन दिनों हरजीत टीका गमरू गाँव के बच्चों को कला से रूबरू करा रही हैं। और अस्सू, कूनी की तरह उनकी भी कहानियाँ बुन रही हैं।

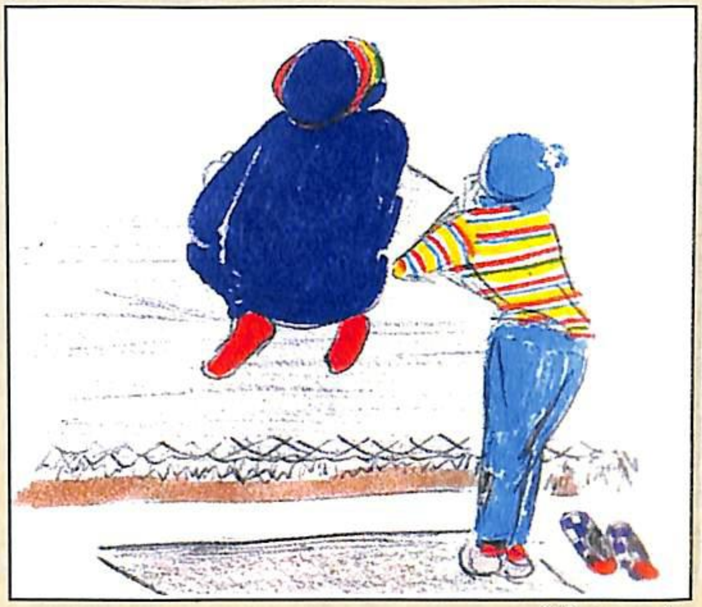
15.3.97

मैं शाम का पाठ (पूजा) कर रही थी और अस्सू बाईबल ले कर बैठा था। कूनी बोला, "माँ मेरी उँगली पर छोटा-सा पतंगा चढ़ गया और मैंने जब उसे धीरे-से उठाकर हवा में किया तो हवा उसे मेरी उँगली से उड़ा ले गई।"



सारा दिन पढ़ने और खेलने के बाद शाम को अस्सू और कूनी रोज़ की तरह "डिज़्नी आर" (Disney Hour) देख रहे थे। कार्टून शो में तीन सील मछलियाँ खाने के लिए एक दूसरे से झगड़ रही थीं और एक छोटी सील इस सारी लड़ाई के दौरान बाहर निकल गई। यह सब देखकर अस्सू मेरे पास आया और बोला, "बहुत सारे लोग जब खाने के लिए झगड़ते हैं तो चालाक उस लड़ाई का फायदा उठाकर खाना उड़ा ले जाते हैं। झगड़ने वालों को कुछ नहीं मिलता"। माँ ने उससे पूछा, "तुमने यह कहाँ पढ़ा अस्सू?"

तो अस्सू बोला, "एसप की कहानियों (Aesop's Fables) में पढ़ा था"।



सभी चित्रः हरजीत

# मुझे वह थप्पड़ आज तक याद है...

पगड़ी वाले आदमी ने गिरने से बचने के लिए दोनों हाथों से मेरी साइकिल का हैण्डल पकड़ लिया। अब वह एक तरह से मेरे मडगार्ड पर बैठा था। दोनों तरफ उसके पैर लटक रहे थे। उसका बड़ा-सा मूँछोंवाला चेहरा और पगड़ी ठीक मेरी आँखों के सामने थी। मुझे सड़क दिखाई देना बन्द हो गई थी और साइकिल थी कि ज़ोर से भागी जा रही थी।

आदमी गुस्से में तमतमाते हुए चीखा, "रोक!"

लेकिन मैं रोकता कैसे? दोनों ब्रेक पूरे दबा रखे थे और साइकिल की रफ्तार फिर भी तेज़ होती जा रही थी। आदमी ने गर्दन घुमाकर एक नज़र सड़क को देखने की कोशिश की। गर्दन पीछे तो क्या मुड़ती, उसे आजू-बाजू की भागती सड़क ही दिखाई दी होगी। वह कूदने की सोच भी रहा हो तो यह देखकर उसने इरादा छोड़ दिया होगा।

उसे और गुस्सा आ गया। वह चिल्लाया, "रोक!"

अब मैं उसे कैसे बताता कि मैं नहीं रोक सकता। मेरी हालत तो और भी खराब थी। सामने उसकी पगड़ी और मूँछों के अलावा कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। साइकिल में घण्टी भी नहीं थी। साइकिल उसे और मुझे लिए-लिए जैसे कुएँ में गिर रही थी। किसी भी समय हम सामने से आती किसी गाड़ी से टकरा सकते थे। दिल ज़ोर से धड़क रहा था। रुलाई फूट पड़ने को थी। और वह था कि रोक! रोक! किए जा रहा था।

जैसे-तैसे ओवरब्रिज की वह ढलान सही सलामत खत्म हुई। साइकिल के अगले मडगार्ड पर टँगे उस बेबस आदमी ने दोनों तरफ की सड़क पर अपनी जूतियाँ घिसटना शुरू किया। कोई पचास कदम दूर जाकर साइकिल रुकी।

जैसे ही उसने हैण्डल छोड़ा और एक टाँग उठाकर खुद को इस मनहूस साइकिल से आज़ाद किया, मैं साइकिल समेत धड़ाम से गिरा। आदमी मुझे उठाने की बजाय अपनी पगड़ी ठीक करने लगा। जैसे ही मैं उठकर खड़ा हुआ वह मेरे पास आया और मेरे गाल पर एक ज़ोरदार थप्पड़ जड़ दिया। बोला कुछ नहीं। बस थप्पड़ मारा और बड़बड़ाता हुआ चला गया।

मुझे वह थप्पड़ आज तक याद है। पर सोचता हूँ उस बेचारे को भी तो दोबारा पुल चढ़ना पड़ा होगा।

# मेरा पन्ना

## बीजू की शैतानी



मेरे घर के ऊपर की मंज़िल में अंकल और आँटी रहते हैं। वे हमारे मकान मालिक हैं। बीजू उनका पालतू कुत्ता है। वह सफेद और काले रंग के धब्बों वाला प्यारा कुत्ता है। वह एक दिन हमारे घर के अन्दर घुस गया था। किचन में हरे रंग की झाड़ू पड़ी थी। बीजू ने उसको सूँघना शुरू किया फिर मुँह में दबाकर ऊपर की ओर भागा।



मैं और मेरी दीदी ने उसको बहुत रोका लेकिन वह नहीं माना। उसे हरे रंग की झाड़ू पसन्द आ गई थी। वह झाड़ू को मुँह में दबाकर छत पर चला गया।



जब वह भागते-भागते थक गया तो झाड़ू के साथ सो गया। जैसे ही मैंने झाड़ू को उठाना चाहा वह जग गया और मेरे ऊपर भौंकने लगा।



फिर अंकल आ गए और उन्होंने मुझसे झाड़ू लेकर उसे सीढ़ियों पर रख दिया। अंकल के आने के बाद बीजू शान्त होकर बैठ गया।

*कहानी व चित्र: अंकुश झा, तीसरी, भोपाल, म.*

## मेरे पापा का जहाज़

मेरे पापा का जहाज़।
देखा तो इतना विशाल!!
तैरता पानी पर कैसे?
लोहे का जहाज़।
लहरों पर ऊपर नीचे
हिचकोले खाता जहाज़।
मेरे पापा का जहाज़!!



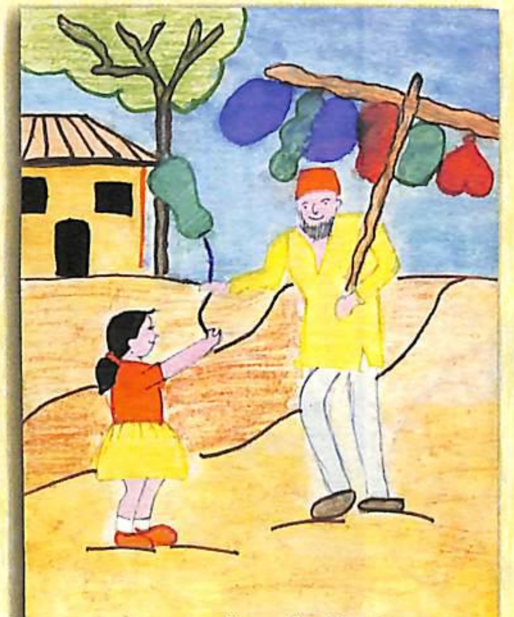

कविता व चित्रः अपूर्व सोमंची, तीसरी



सृष्टि सहाय, पाँचवीं, उदयपुर, राजस्थान



सूरज बामनिया, चौथी, देवास, म. प्र.



आकाँक्षा, पाँचवीं, भोपाल, म. प्र.

## मेरी सत्यकथा

एक बार मैं नदी पर नहाने गया। मैं बिना सोचे-समझे नदी में कूद गया। मैं जिस जगह कूदा वहाँ पर बहुत गहरा था। मुझे तैरना नहीं आता था। इस कारण मैं नदी में डूबने लगा। मैंने चिल्लाने की बहुत कोशिश की किन्तु मैं चिल्ला नहीं पाया। मेरी मौसी की लड़की ने मुझे बचाने के लिए कई प्रयत्न किए, किन्तु असफल रही। वहाँ पर एक पागल नहा रहा था। मेरी दीदी ने उसे मुझे बचाने के लिए कहा, किन्तु उस पागल ने मेरी दीदी की एक न सुनी। मेरी दीदी बहुत देर तक चिल्लाती रही। तब एक विचित्र बात हुई। वह पागल मुझे बचाने के लिए नदी में आया किन्तु वह तैर नहीं रहा था। मुझे ऐसा लगा जैसे वो पानी पर ज़मीन की तरह चल रहा हो। उस पागल ने मुझे वहाँ से निकालकर किनारे पर एक गड्ढे में लाकर छोड़ दिया। मेरी दीदी ने चादर से मुझे बाहर निकाला। फिर मैं घर पर आया। वह दिन मुझे आज तक याद है।

*अर्जुन सिंह डाबी, उज्जैन (म.प्र.)*

# डाक्टर चींचूं के चमत्कार

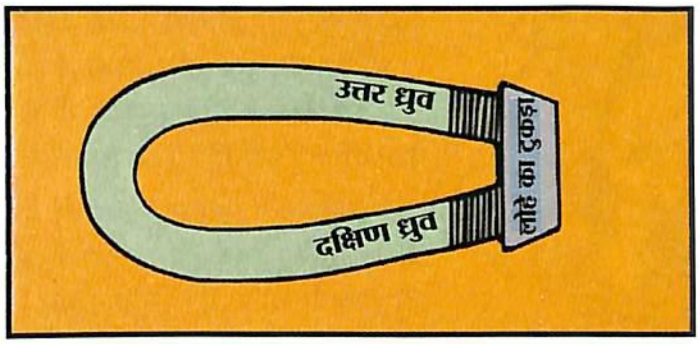




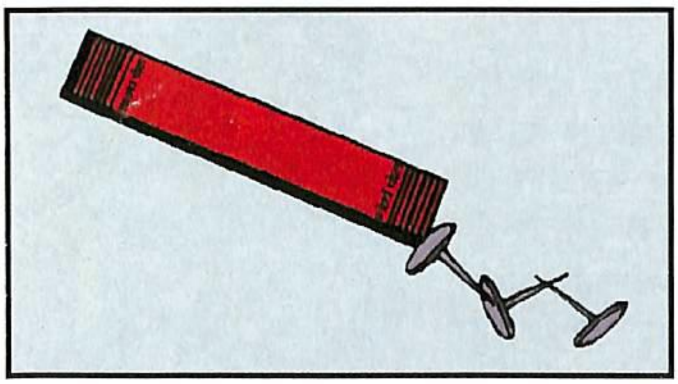
# आबिद सुरती




लोहे या फौलाद से बना हुआ चुम्बक घोड़े की नाल के आकार का होता है। यह अन्य लोहे के टुकड़े या फौलाद को आकर्षित करने की शक्ति रखता है। इस चुम्बक के सिरों को **उत्तर ध्रुव** और **दक्षिण ध्रुव** कहा जाता है।




जब कोई चुम्बक लोहे को छूता है, तब उस लोहे में भी चुम्बक के कुछ तत्व आ जाते हैं और वह लोहा भी दूसरे छोटे-छोटे लोहे के टुकड़ों को खींचने लगता है।











# तीन विचित्र

एक लोककथा





एक समय की बात है। एक आदमी के तीन बच्चे थे – दो लड़के और एक लड़की। तीनों ही बड़े विचित्र थे। पहले बेटे के कान बहुत तेज़ थे। इतने तेज़ कि वह दूर घास पर चलते हुए एक छोटे-से कीड़े की आवाज़ तक सुन लेता था। दूसरे बेटे की नज़र बहुत तेज़ थी। वह एक मील दूर से ही रेत का एक दाना देख सकता था। और बेटी, वो तो और भी विचित्र थी। वह हर चीज़ गिन सकती थी, चाहे वे पेड़ों की पत्तियाँ हों या आसमान के तारे।

इन तीनों में नई-नई जगहों को देखने की बहुत चाह थी। इसलिए, एक दिन तीनों ने अपने माँ-बाप से विदा ली और लम्बी यात्रा पर निकल पड़े। उन्होंने अपने पास एक बाजरे के बोरे के अलावा कुछ और न रखा।

दोपहर तक वे एक नदी किनारे पहुँचे। नदी नाव से ही पार की जा सकती थी। उन्होंने वहाँ के एक मल्लाह से उन्हें पार उतारने को कहा। तीनों भाई-बहन नाव में धीरे-से चढ़े। और बाजरे का बोरा भी सम्भालकर नाव में रख लिया।

मल्लाह ने नाव को दूसरे किनारे की ओर खेना शुरू किया। नाव कुछ ही दूर गई होगी कि एक लड़का चिल्लाया, "ठहरो! इस बोरे से एक दाना फिसलकर नदी में जा गिरा है। मैंने अभी उसके गिरने की आवाज़ सुनी।"

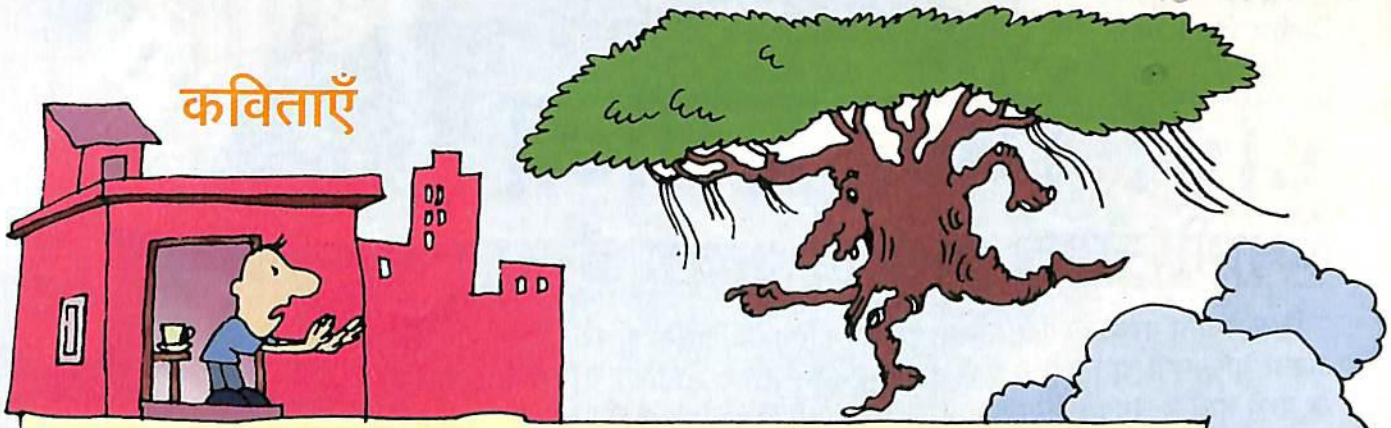
मल्लाह को विश्वास नहीं हुआ। वह रुका नहीं। इस पर लड़की बोली, "रुको, रुको, मैंने सारे दाने गिन लिए हैं। बोरे में सचमुच एक दाना कम है।"

दूसरा लड़का बोला, "मैं नदी में अभी डुबकी लगाता हूँ। मुझे दाना ज़रूर दिख जाएगा।" यह कहकर उसने नदी में छलाँग लगा दी।

और खुशी से बोला, "देखो-देखो, यह रहा बाजरे का वह दाना। अच्छा हुआ कि भैया ने इसके गिरने की आवाज़ सुन ली और दीदी ने बाजरे की गिनती कर ली।" यह कहकर वह नाव पर चढ़ गया और दाना बोरे में डाल दिया।

"शाबाश," तीनों ने कहा। फिर मल्लाह से कहा, "चलो मल्लाह, उस पार ले चलो। देखें आगे क्या होता है?"

# कविताएँ





## नए शहर में बरगद

जैसे मुझे जानता हो बरसों से
देखो, उस दढ़ियल बरगद को देखो
मुझे देखा
तो कैसा लपका चला आ रहा है
मेरी तरफ
पर अफसोस
कि चाय के लिए
मैं उसे घर नहीं ले जा सकता।

*केदारनाथ सिंह*

## एक कहानी कहनी है

एक कहानी कहनी है
वो जो आम की टहनी है
वहीं कहीं एक तोती है
जो दिन भर बस सोती है
दिन में कभी जगा दो तो
बड़ी देर तक रोती है
सभी परिन्दे कहते हैं
वो कुम्भकरन की पोती है।

*सुशील शुक्ल*

*प्रभात की दो कविताएँ*

## क्यों क्यों क्यों?

पेड़ से पत्ते झड़ते क्यों हैं?
बादल इतना उड़ते क्यों हैं?
आँख में आँसू आते क्यों हैं?
आग में उँगली जलती क्यों है?
पीठ में खुजली चलती क्यों है?
गिरकर मटका फूटे क्यों है?
नभ का तारा टूटे क्यों है?



## खिल्लू

आओ भाई खिल्लू,
अभी तो की थी मिल्लू,
भरा नहीं क्या दिल्लू।





दिलीप चिंचालकर

# रोज़ चित्र बनाना
## दिमागी सेहत के लिए अच्छा है

चित्र बनाना बच्चों के लिए उतना ही स्वाभाविक है जितना शरारतें करना, ज़िद करना या अपनी बात पूरी न होने पर रोना-धोना। तभी तो जिन घरों में 4-5 साल के बच्चे होते हैं उनकी दीवारें चॉक, पेंसिल, रंगों से रंगी रहती हैं। कुछ समय बाद चित्र दीवार से उतर कर कागज़ पर आने लगते हैं। तुमने भी ऐसा ही किया होगा? अच्छा कुछ पूछूँ? तुम चित्र कब-कब बनाते हो?

... रोज़

... हर शुक्रवार या जिस दिन ड्रॉइंग की क्लास होती है, उस दिन।

... किसी प्रतियोगिता में भाग लेते समय।

प्रतियोगिता में तो चित्र किसी दिए हुए विषय पर ही बनते हैं। जैसे पर्यावरण, विश्व शान्ति, मेरा देश महान वगैरह वगैरह। क्या तुम्हें नहीं लगता जिन शब्दों के मतलब हमें अच्छे-से नहीं मालूम उनके चित्र बनाने का क्या अर्थ? अब देखते हैं कि ड्रॉइंग क्लास में क्या होता है। अक्सर टीचर जो कुछ बोर्ड पर बनाती हैं तुम उसे टीप लेते होगे। आमतौर पर ये चित्र सूर्योदय, जंगल-पहाड़, सिर पर घड़ा रखकर जाती देहाती लड़की आदि जैसे होते हैं। हाँ, अगर तुम्हारी टीचर कुछ इतना अलग बनाती हैं, जितना खाने में ढोकला या दोसा हो, तो बहुत अच्छा है। लेकिन सबसे अच्छा है यदि तुम रोज़ चित्र बनाते हो। क्योंकि रोज़-रोज़ चित्र बनाने से हमारे अन्दर के घिसे-पिटे चित्र बाहर निकल आते हैं और हम कुछ नया बनाने लगते हैं। जिन चीज़ों के चित्र बनाने हैं वे रोज़-रोज़ नई नहीं भी हों तो भी हम उन्हें नए-नए ढंग से बनाने लगते हैं।

जैसे यह बिल्ली का चित्र है (ख)। शर्त लगाई जा सकती है कि पहले इस बच्चे ने बिलकुल अलग बिल्ली बनाई होगी। फिर कई बार उसे बनाने के बाद यह चित्र बनाया होगा। दूसरी बच्ची ने अपना पहला चित्र सिर से दो टाँगें जोड़कर बनाया। उसके बाद हैंस एण्डरसन की एक कहानी पढ़कर खुद को जल-मछली की शक्ल में बनाया (क)। फिर सतरंगे कुकुरमुत्ते (मशरूम) पर खड़ी पंखों वाली परी की तरह (च)। आगे तो कमाल ही हो गया – खुद को मोर बनाकर पंखों पर अपनी पसन्द की टॉफियाँ चिपका दीं (घ)।

कुल मिलाकर बात यह है कि लगातार चित्र बनाते जाने से उनमें सुधार होता जाता है। नए-नए प्रयोग भी होते जाते हैं। क्योंकि हम उस विषय को ध्यान से देखते हैं और उस पर विचार भी करते हैं। तभी तो हवाई जहाज़ का चित्र बनाने से पहले इस लड़के ने जेट और छोटे विमान को ध्यान से देखा और दोनों में से अपनी पसन्द की बातें उठा लीं (ग)।

ज़्यादा नहीं, आधा घण्टा ही सही, लेकिन रोज़ चित्र बनाना दिमाग के लिए अच्छा होता है। कहते हैं न – *करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान*। यकीन न हो तो आज ही तय कर लो कि कुर्सी का एक चित्र रोज़ बनाओगे। डाइनिंग टेबल, कक्षा, स्कूल के दफ्तर, रेस्तराँ, गुमठी, चाय-नाई की दुकान या जहाँ नई भी दिखे उस कुर्सी का चित्र बना लो। महीने भर में तुम "कुर्सी विशेषज्ञ" बन जाओगे और किसी दिन "फैंटसी-कुर्सी" डिज़ाइन कर सकोगे। कुर्सी तो एक उदाहरण है। तुम अपनी पसन्द की कोई भी चीज़ चुन सकते हो।


क


ख


ग


घ


च

# मध्यप्रदेश में
# संस्कृति के नये अध्याय




- अपने नवसंवत् का सम्मान : गुड़ी पड़वा पर अवकाश।
- कैलाश मानसरोवर, हिंगलाज देवी मंदिर और ननकाना साहेब की पवित्र यात्रा हेतु शासन की ओर से अनुदान। यात्रा का 50 प्रतिशत या तीस हजार रुपये।
- गौ हत्या पर प्रतिबंध, उल्लंघन की दशा में कठोर सजा का प्रावधान।
- धर्म स्वातंत्र्य विधेयक पारित।
- ओरछा में राष्ट्रीय रामायण कला संग्रहालय। चित्रकूट में तुलसी शोध संस्थान का भवन और वृहद पुस्तकालय।
- कलाओं के घर भारत भवन में नई बयार : स्वयंसिद्धा और कई अन्य नवाचारी प्रसंग।
- वनवासी क्षेत्र की महिलाओं को कला एवं साहित्य के क्षेत्र में विशेष उपलब्धि पर दो लाख रुपये का **''रानी दुर्गावती राष्ट्रीय सम्मान पुरस्कार''**
- वनवासी क्षेत्र की कविता एवं साहित्य के क्षेत्र में योगदान के लिए दो लाख रुपये का **''वीर शंकर शाह रघुनाथ शाह राष्ट्रीय पुरस्कार''** स्थापित।
- प्रदेश के सर्वश्रेष्ठ वनवासी खिलाड़ी के लिए एक लाख रुपये का **''वीर टंट्या भील सम्मान पुरस्कार''**
- पुरातत्व क्षेत्र के लिये एक लाख रुपये का वाकणकर सम्मान।
- साहित्य और संस्कृति क्षेत्र के सम्मानों की राशि बढ़ाकर दुगुनी की गई। राज्य स्तरीय सम्मानों में भी वृद्धि।
- साहित्यकारों/कलाकारों की आर्थिक मदद में वृद्धि।
- वर्ष प्रतिपदा पर उज्जैन में विक्रमोत्सव। अन्य स्थानों पर नवसंवत्सर का आयोजन प्रतिवर्ष।
- गणतंत्र दिवस की संध्या पर सभी जिला मुख्यालयों पर लोक उत्सव 'भारत पर्व'।
- 1857 स्वतंत्रता संग्राम के संबंध में राज्य शासन द्वारा वृहत आयोजन। जंगल सत्याग्रह के 75 वर्ष पूर्ण होने पर भी कार्यक्रमों की श्रृंखला।
- स्वाधीनता संग्राम में मध्यप्रदेश के योगदान के रेखांकन/आकलन के लिये राष्ट्रीय एवं जिला स्तरीय फैलोशिप।
- स्वतंत्रता संग्राम को समर्पित आजाद हिंद रेडियो की स्थापना की कार्रवाई।
- देश में पहली बार प्रदेश की कला मंडलियों को अनुदान के लिये 17 करोड़ रुपये से ज्यादा का प्रावधान।
- सांस्कृतिक समारोह प्रदेश के दूरस्थ अंचलों और ग्रामीण क्षेत्रों में। भोजपुर उत्सव, बेतवा उत्सव, उदयपुर उत्सव, गढ़कुण्डार में और धुबेला में धरोहर उत्सव, भेड़ाघाट में नर्मदा, चित्रकूट में शरद और छिंदवाड़ा में लोकतरंग उत्सव। देवास में श्रद्धांजलि प्रसंग।
- प्रदेश के प्रत्येक जिले में सांस्कृतिक गतिविधियों के विस्तार की योजना।
- सूर्य नमस्कार-शासकीय विद्यालयों में प्रारंभ। प्रदेश की योग नीति जारी।
- राम वन पथ विकास कार्यक्रम- चित्रकूट में विशेष सांस्कृतिक क्षेत्र का निर्माण। परिक्रमा पथ पक्का करने की कार्रवाई, रामवन पथ शोध के लिये रिसर्च फैलोशिप।
- वराह मिहिर शोध संस्थान, उज्जैन को भूमि आवंटन।
- कई वर्षों बाद राज्य में 46 नये स्मारक संरक्षित।
- अन्तर्राष्ट्रीय रामायण मेला शीघ्र।
- शाजापुर में देश के पहले गौ-अभ्यारण्य की स्थापना की कार्रवाई प्रचलित।
- संगीत विश्वविद्यालय की स्थापना की कार्रवाई प्रचलित।
- पाणिनी संस्कृत विश्वविद्यालय उज्जैन में स्थापित करने की कार्यवाही प्रचलित।
- मध्यप्रदेश का गीत बना जय-जय मध्यप्रदेश।

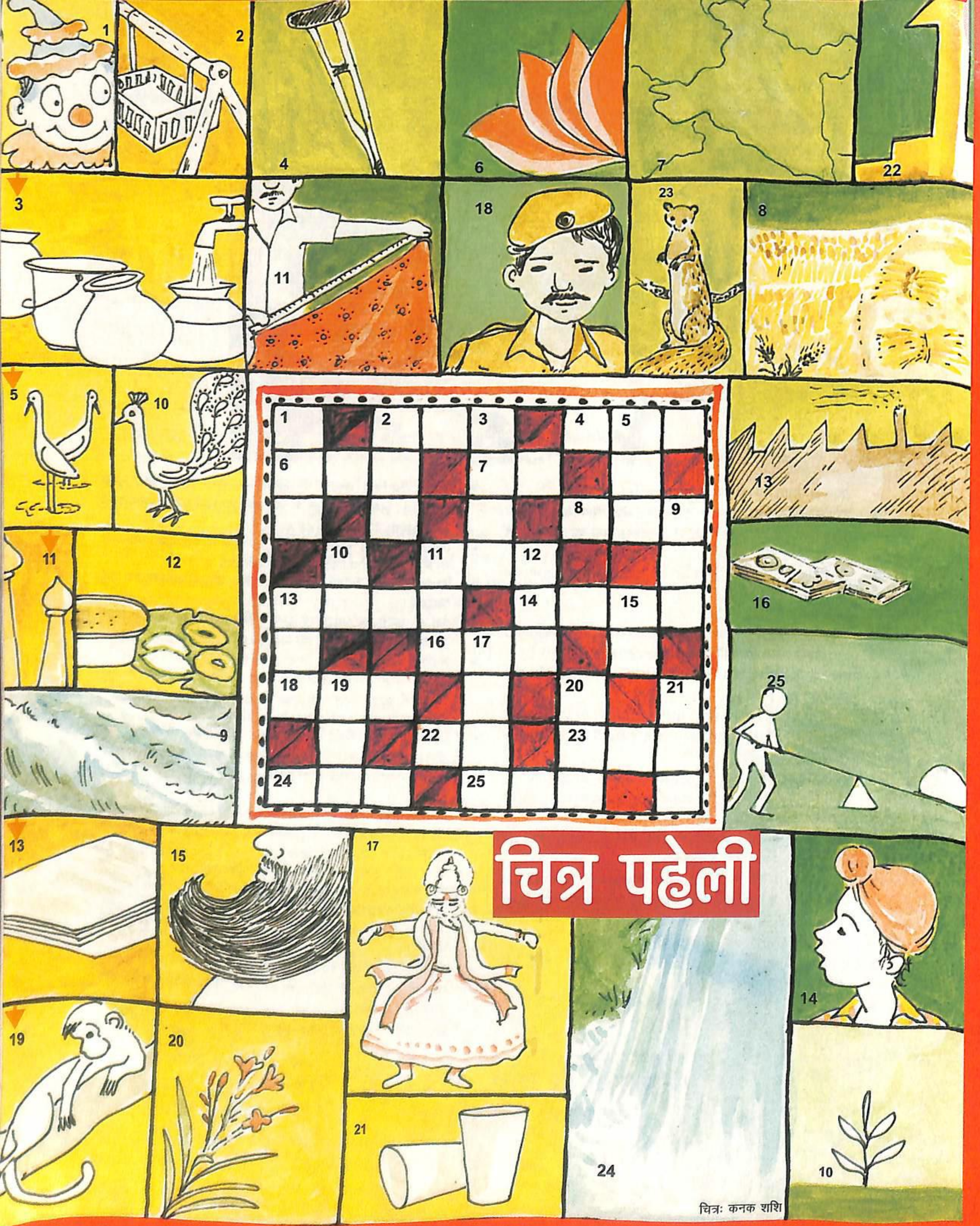
**परंपराओं के साथ, भविष्य की ओर**

**मध्यप्रदेश**

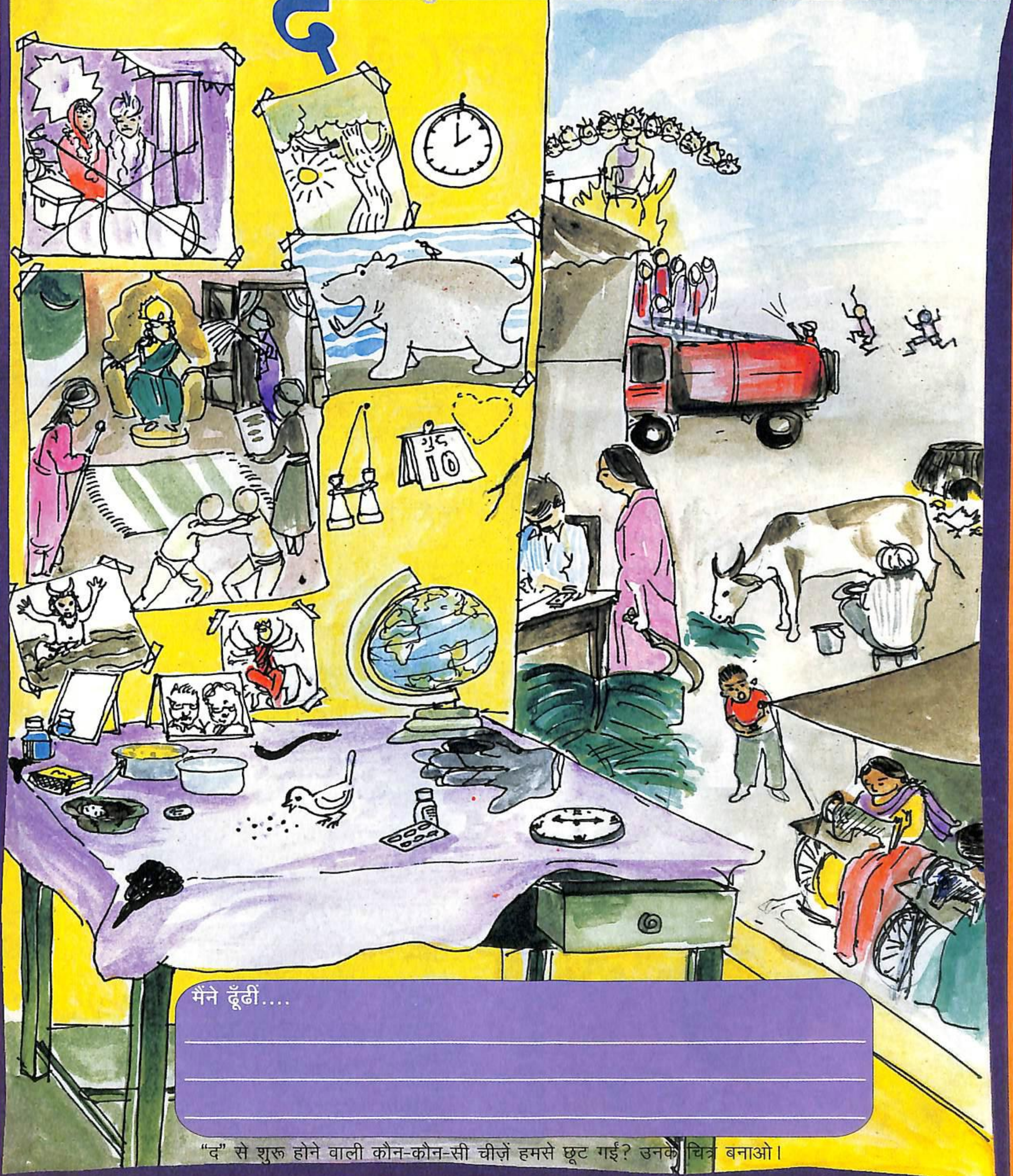
D6 7018 दिनांक 15/04/2008

मध्यप्रदेश जनसंपर्क द्वारा जारी

मध्यप्रदेश माध्यम/08


चित्र पहेली
चित्रः कनक शशि

# इस पन्ने में द से शुरू होने वाली कितनी चीज़ें हैं?




मैंने ढूँढीं....

"द" से शुरू होने वाली कौन-कौन-सी चीज़ें हमसे छूट गईं? उनके चित्र बनाओ।

चित्र: कनक शशि



# हल्ला-गुल्ला

प्रभात

हल्ला-गुल्ला
हल्ला-गुल्ला।

किसकी ये दुम,
और किसका पुछल्ला?

चूहे की ये दुम,
और मोर का पुछल्ला।
हल्ला-गुल्ला
हल्ला-गुल्ला।

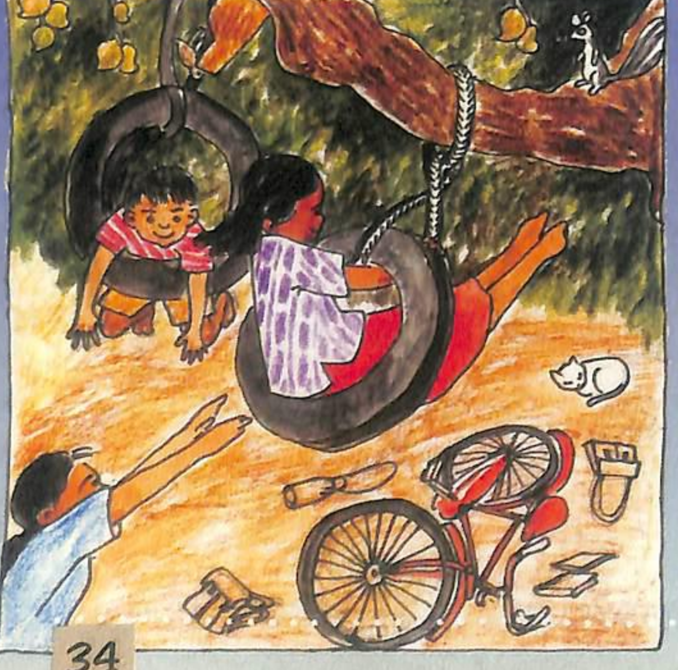
किसकी ये पूँछ,
और किसकी ये मूँछ?

पिल्ले की है पूँछ,
बागड़बिल्ले की है मूँछ।
हल्ला-गुल्ला,
हल्ला-गुल्ला।

किसके हैं पंख,
और किसका है डंक?
गौरैया के पंख,
और बिच्छू का है डंक।
हल्ला-गुल्ला,
हल्ला-गुल्ला।



इन दोनों चित्रों में कितने अन्तर हैं?



चित्रः कनक शशि

# माथापच्ची

| रविवार | सोमवार | मंगलवार | बुधवार | बृहस्पतिवार | शुक्रवार | शनिवार |
|---|---|---|---|---|---|---|
| | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 |
| 7 | 8 | 9 | 10 | 11 | 12 | 13 |
| 14 | 15 | 16 | 17 | 18 | 19 | 20 |
| 21 | 22 | 23 | 24 | 25 | 26 | 27 |
| 28 | 29 | 30 | 31 | | | |

सोमा ने सोच रखा था कि मई महीने में वो क्या-क्या काम करेगी। जिन तारीखों में ये काम किए जाने हैं उन्हें नीले रंग से दिखाया गया है। किए जाने वाले काम हैं:

- सोमा समरा के घर सप्ताह के अन्त में जाएगी।
- बुधवार को स्कूल में नाटक होगा।
- समरा के घर जाने से पहले वह एक दिन चिड़ियाघर भी जाएगी।
- स्कूल में नाटक होने के दो दिन बाद फुटबॉल का मैच होगा।
- नाटक के दो हफ्ते बाद सोमा का जन्मदिन है।

*तुम्हें बताना है कि सोमा किस दिन कौन-सा काम करेगी।*



## कुछ हटके!!!

एक खगोलशास्त्री, एक भौतिकशास्त्री और एक गणितज्ञ छुट्टियाँ मना रहे थे। एक बार रेल की खिड़की से उन्होंने एक खेत में एक काली भेड़ देखी। खगोलशास्त्री ने कहा, "कितनी मज़ेदार बात है। यहाँ की सभी भेड़ें काली होती हैं।"

भौतिकशास्त्री ने कहा, "नहीं, नहीं। यहाँ की कुछ भेड़ें काली होती है।"

गणितज्ञ टकटकी लगाए भेड़ को देखने के बाद बोला, "इस जगह पर कम से कम एक खेत ऐसा है जिसमें एक ऐसी भेड़ है जो कम से कम एक तरफ से काली है।"

*अहा! एक्टिविटीज़ से साभार*

## पहेलियाँ



अट्ट पाँय पट्ट पाँय
चलत विकट पाँय
तीन मूड़ दस पाँय

आहाँ-आहाँ दुई बाहाँ
पीठी पर पूँछ
यह तमाशा कहाँ

मैं कटूँ, मैं मरूँ
तुम काहे को रोते हो

एक नाम की दो चीज़ें
एक को खाते, एक को पहनते

हमने देखा ऐसा बन्दर
जो उछले पानी के अन्दर

एक खड़ी, एक पड़ी
एक छमा छम नाच रही

चार ड्राईवर, एक सवारी
उसके पीछे जनता सारी

एक वीर
गाना गा के मारे तीर

आड़ा-टेढ़ा रस्ता
बीच में कुआँ

**प्रस्तुतिः उमर**

पहेलियों के हलः बैलगाड़ी, तराजू, प्याज, लौंग, मेंढक, रोटी, मुर्दा, मच्छर, कान



विनोद कुमार शुक्ल

# हरी घास की छप्पर वाली झोपड़ी और बौना पहाड़! (VI)

बजरंग महराज के बाएँ हाथ में ग्राहक ने एक रुपए और पचास पैसे का सिक्का रखा। बजरंग महराज ने दाहिने हाथ से उस सिक्के को उठाकर गल्ले की पेटी में बने खाँचे में डाल दिया। गल्ले की पेटी में सिक्का गिरने की आवाज़ आती। सिक्के पर सिक्का गिरने की आवाज़ और बौने पहाड़ की गहराई तल पर सिक्कों की ढेरी पर पत्थर के गिरने की आवाज़ बहुत मिलती-जुलती थी। सिक्के पर सिक्के गिरने की आवाज़ सिक्के की होती और पत्थर के सिक्के पर गिरने की आवाज़ भी सिक्के की होती। गल्ले की पेटी, तखत से सटे फर्श पर रखी होती। गल्ले की पेटी तखत की ऊँचाई के बराबर थी। परन्तु ग्राहक उत्सुकता वश रुककर गल्ले में सिक्का गिरने की आवाज़ सुनता तो उसे लगता कि बहुत गहराई से आवाज़ आती है। अगर ग्राहक इस तरह खड़ा रह जाता तो बजरंग महराज धीरे से बोलते कि वही आदमी सुने, "क्यों खड़ा है?" तब भी ज़ोर से शेर के दहाड़ने की आवाज़ आती। और वह आदमी घबरा जाता। वहाँ से तेज़ी से दूर चले जाना चाहता। यदि बजरंग महराज कुछ भी न बोले और शेर दहाड़े तो भी लोग कहते कि बजरंग महराज बोल रहे हैं। धीरे-धीरे शेर का दहाड़ना बजरंग महराज का बोलना हो गया। दो-एक दिन शेर की आवाज़ सुनाई नहीं देती तो लोग कहते बजरंग महराज की आवाज़ सुनाई नहीं दी। लोग यह भी अनुमान लगाते कि बजरंग महराज जो सिक्का गल्ले की पेटी में डालते हैं असल में पहाड़ की गहराई के मुख में डालते हैं। और गल्ले की पेटी का सिक्का गहराई के तल पर सिक्कों के ढेर पर ही गिरता है।

कभी ग्राहक से होता कि सिक्का देते-देते वह बरामदे के फर्श पर गिर जाता। उस सिक्के को ढूँढते तो सिक्का नहीं मिलता। दुबारा देने लगते तो बजरंग महराज कहते "रहने दो। मिल गया है।" ग्राहक पलटकर इतनी तेज़ी से जाता कि होटल से कुछ दूर निकल जाता तब शेर के दहाड़ने की आवाज़ सुनाई देती। आवाज़ से छुपकर भागने की कोशिश करते तो भी आवाज़ ढूँढ लेती और सुनाई देती। यह सच होगा कि बजरंग महराज को देने के लिए जो सिक्का गिर जाता है वह गिरता नहीं वह उनको मिल जाता है। खन्न से फर्श पर गिरा तो लगता सीधे गल्ले की पेटी में खन्न से गिरा। कुछ लोग तो बजरंग महराज को पैसा देने से बचते थे। अपने साथी से या चाय देने वाले से कहते, "पैसा तुम दे दो।" चाय देने वाला मना कर देता। या मुँह पर उँगली रखकर कहता, "पैसा नीचे गिरा दो।" ग्राहक फर्श पर खन्न से पैसा गिरा देता। जब पैसा खन्न से नहीं गिरता या कम आवाज़ होती तो ग्राहक सोचता कि पता नहीं सिक्का बजरंग महराज को मिला कि नहीं। तब सिक्का उठाकर दुबारा ज़ोर से गिराने की उसकी इच्छा होती। परन्तु पहली बार के गिरने में ही बजरंग महराज को सिक्का मिल जाता। सिक्का गिरने के बाद ढूँढने से कभी नहीं मिलता था।

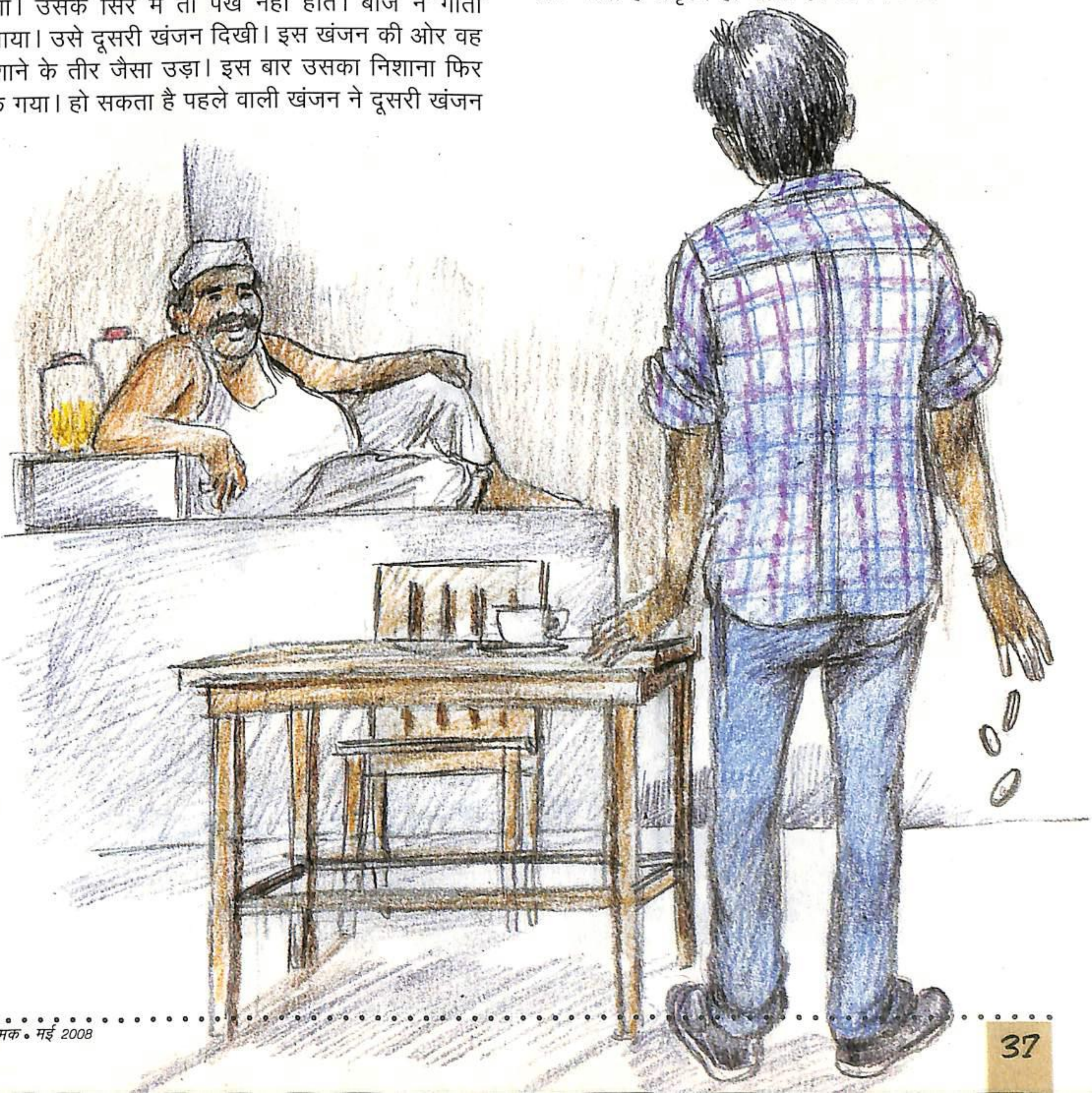
बिना भुगतान किए कोई रहता नहीं था। कभी होटल से निकल आते और भुगतान करना भूल जाते। रास्ते में याद आता तो लौटकर जाते और बरामदे के फर्श पर कहीं सिक्का खन्न से डाल देते। बजरंग महराज की हथेली पर सिक्का रखने से बचते। और खुशी से घर लौट आते। यदि पैसा देना देर तक याद नहीं आता, रात को पैसे देने की याद आती या सपने में याद आती, आधी रात को नींद खुलती तो उठकर खूँटी में टँगी कमीज़ उतारकर जेब से पैसे निकालते। और वहीं पैसा गिरा देते। खन्न की आवाज़ आती। तब निश्चित होकर सो जाते। दूसरे को रात के सन्नाटे में खन्न की आवाज़ आती तो वह समझ जाता कि चाय-भजिया के पैसे देना भूल गया था। हिसाब चुकता कर रहा है। फर्श पर ऐसा सिक्का गिर जाता जिसका बजरंग महराज से लेना-देना नहीं है, वह पड़ा हुआ भी आसानी से दिख जाता और उसे उठा लिया जाता। यदि नहीं मिलता तो इसका यह मतलब नहीं कि वह बजरंग महराज को मिल गया है। दूसरे अन्य को मिलता तो वह घास की छप्पर वाली झोपड़ी में जाता और बूढ़े-बूढ़ी के पास जमा कर देता। और सिक्का कहाँ मिला यह बता देता जैसे आम के पेड़ों की सड़क पर सबसे खट्टे आम के पेड़ के नीचे मिला। बस्ती में केवल सिक्के चलते थे। तरह-तरह के सिक्के चलते। इधर-उधर से भटक कर आए लोग जिस तरह का और जितना सिक्का लाते वह पहले के सिक्कों के साथ मिलकर चलन में आ जाता। बहुत पहले के सोने और चाँदी के सिक्के जो दो-चार ही होंगे, उन्हें कोई नहीं लेता था। उसके चिल्हर किसी के पास नहीं थे। इसके बाद भी उसको चलाया जाता तो वह खराब, गिल्लट के सिक्के जैसा चलता।

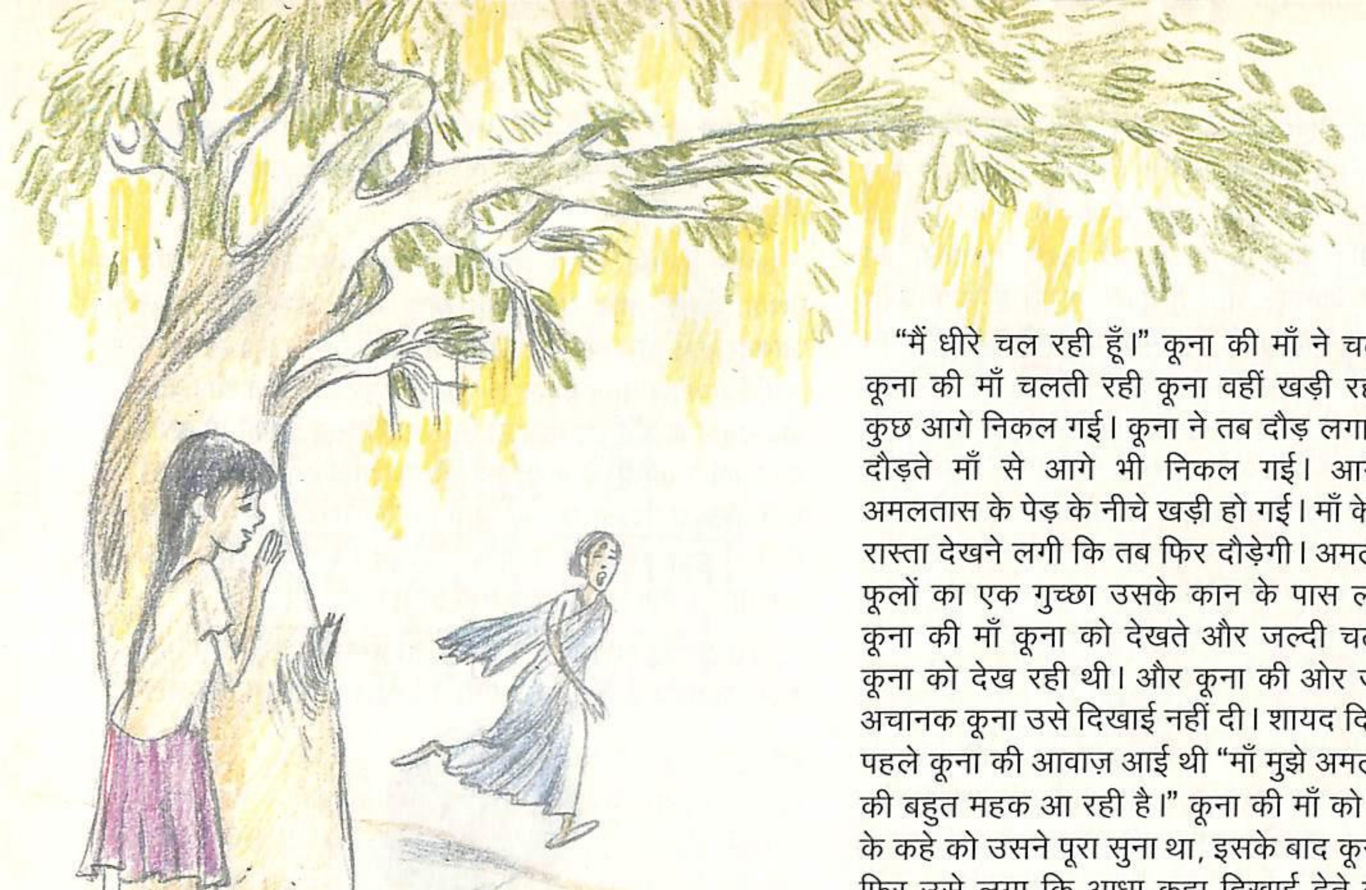
नुकीले पंख वाला बाज था। उसका निचला भाग सफेद

और ऊपरी भाग नीला भूरा बौने पहाड़ की एक ऊँची चट्टान पर बैठा शिकार की ताक में था। दो खंजन चिड़ियाँ जो बोलू के साथ कुछ देर पहले छुपा-छुपाइल खेल कर लौट रही थीं बाज को दिखीं। जैसे जंगल में शेर दूसरे जानवरों को दिखता है और जानवर जान बचाकर भागते हैं उसी तरह बाज जिस पेड़ पर बैठता है उस पेड़ की सभी चिड़ियाँ जान बचाने उड़ जाती हैं। यह लड़ाकू पक्षी चिड़ियों को मार कर खाता है। बाज की आँख बहुत तेज़ होती है। वह खंजन को ताक रहा था कि उसे झपट्टा मारकर दबोचना है। बाज तीर की तरह निशाने की तरफ उड़ा। पर जिस खंजन को उसने निशाना बनाया था उससे वह चूक गया। वहाँ खंजन चिड़िया दिखी नहीं। या तो खंजन चिड़िया सावधान थी। अथवा यह भी हो सकता है कि साथ की दूसरी खंजन ने उसे गायब कर दिया हो। खंजन में स्वयं गायब होने का गुण न ही होता होगा। उसके सिर में तो पंख नहीं होते। बाज ने गोता लगाया। उसे दूसरी खंजन दिखी। इस खंजन की ओर वह निशाने के तीर जैसा उड़ा। इस बार उसका निशाना फिर चूक गया। हो सकता है पहले वाली खंजन ने दूसरी खंजन को गायब कर उसकी जान बचाई हो। दो खंजन के साथ ने बाज को थका दिया। बाज को यह थकावट उड़ने से नहीं निराशा से हुई थी।

जंगल का एक छोटा-सा हिस्सा बबूल का जंगल था। यह हिस्सा बस्ती और जंगल के बीच था। बबूल का जंगल जानबूझकर बना था कि बस्ती के लोग जंगल के अन्दर न जाएँ। थककर बाज बबूल के एक पेड़ पर बैठ गया था। बोलू जब बबूल के पेड़ों के बीच से निकला था तब झोंकों के पंखों का नुकीले काँटों से कुछ नहीं बिगड़ा था। रबर के हवा भरे पंख होते तो पंख में छेद हो जाते। हवा निकलने से बोलू गिर पड़ता। हवा तो बबूल के काँटों भरे जंगल में भी साँय-साँय चलती है। और हवा पंक्चर नहीं होती।

हवा अदृश्य थी। बोलू के झोंकों के पंख अदृश्य थे। जो दूर चला जाता है अदृश्य हो जाता है। खंजन चिड़िया पर बाज़





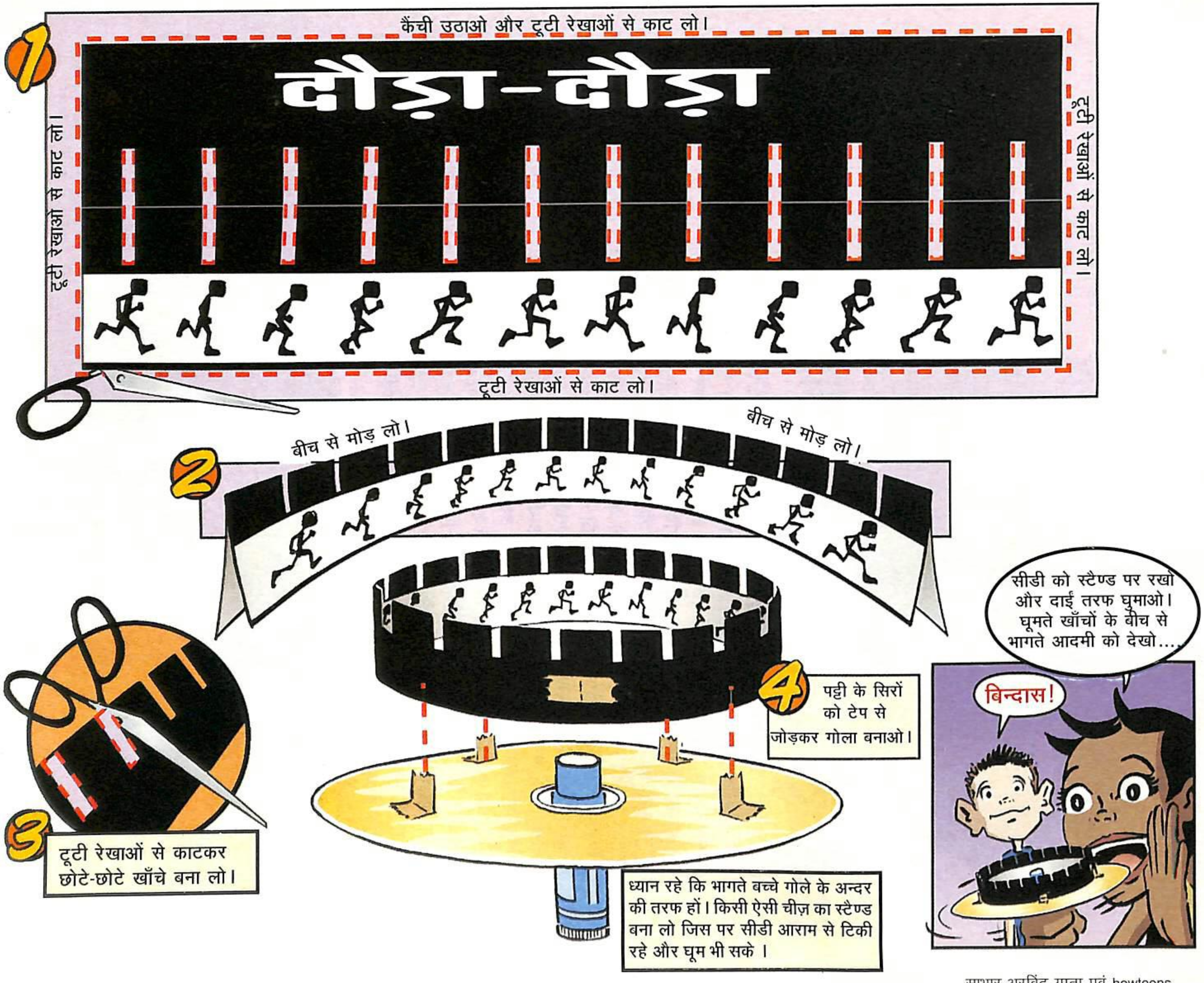
आक्रमण कर रहा था। यह बोलू को दिखाई नहीं दिया था। बोलू देख लेता तो झोंकों के पंख के सहारे उड़ता और बाज़ को भगा देता। जिन्होंने इसे नहीं देखा था यह उनके लिए अदृश्य था।

खंजन चिड़िया जब उड़ती है तो उसकी उड़ान के पथ के नीचे अनेक लोग आते। जिनके सिर के ऊपर वह क्षण भर रहती होगी। और निकल जाती होगी। तब क्षण भर गायब होकर वे दिख जाते होंगे। उनका गायब होना और दिख जाना इतनी जल्दी होता कि पता भी नहीं चलता होगा कि गायब हुए। अधिक समय के लिए अदृश्य होना तभी सम्भव होता होगा जब अधिक समय के लिए खंजन सिर के ऊपर रहे। पंख सिर पर रखना सबसे अच्छा है जितनी देर रखेंगे गायब रहेंगे। आसपास की सभी खंजन चिड़ियाँ बोलू को और बोलू के सभी मित्रों को पहचानने लगी थीं। खंजन चिड़िया का मन बोलू और बोलू के मित्रों से खेलने का होता।

एक दिन कूना पैदल अपनी माँ के साथ जा रही थी। कूना जल्दी चल रही थी। कूना के कदम छोटे-छोटे थे। साथ चलने के लिए कूना की माँ धीरे चल रही थी। कूना की माँ के कदम बड़े थे। कूना चलने से थक गई थी। कूना की माँ धीरे चलने से। "कूना जल्दी चलो।" माँ ने कहा। "माँ मैं जल्दी-जल्दी चल रही हूँ।" कूना ने कहा। कुछ देर बाद "माँ मैं तुम्हारे साथ नहीं चल सकती।" रुकते हुए कूना ने कहा।

"मैं धीरे चल रही हूँ।" कूना की माँ ने चलते हुए कहा। कूना की माँ चलती रही कूना वहीं खड़ी रही। उसकी माँ कुछ आगे निकल गई। कूना ने तब दौड़ लगाई और दौड़ते-दौड़ते माँ से आगे भी निकल गई। आगे जाकर वह अमलतास के पेड़ के नीचे खड़ी हो गई। माँ के पास आने का रास्ता देखने लगी कि तब फिर दौड़ेगी। अमलतास का पीले फूलों का एक गुच्छा उसके कान के पास लटक रहा था। कूना की माँ कूना को देखते और जल्दी चलने लगी। वह कूना को देख रही थी। और कूना की ओर जा रही थी कि अचानक कूना उसे दिखाई नहीं दी। शायद दिखाई न देने के पहले कूना की आवाज़ आई थी "माँ मुझे अमलतास के फूलों की बहुत महक आ रही है।" कूना की माँ को लगा कि कूना के कहे को उसने पूरा सुना था, इसके बाद कूना नहीं दिखी। फिर उसे लगा कि आधा कहा दिखाई देते तक सुना और आधा का दिखाई न देने के बाद सुना। हो सकता है कि उसने दिखाई न देने के बाद कूना का पूरा कहा सुना हो। कहाँ गई? इधर-उधर देखा। "धक" से जी हुआ। कूना के कान के पास अमलतास का फूल जिस डाल का था उसी डाल पर खंजन चिड़िया आकर बैठ गई थी। जिससे पीले फूल का गुच्छा और नीचे हो गया। नीचे होकर फूलों ने छोटी-सी कूना के गाल को छुआ। फूलों का गुच्छा कूना के न दिखने के बाद भी हिल रहा था। कूना की माँ व्याकुल थी। उसे लगा कि वह भागकर घने पेड़ों के बीच आगे चली गई है। कूना की माँ दौड़ने लगी। और वह हिलते अमलतास के गुच्छे के भी आगे पेड़ों तक निकल गई। तब भी कूना उसी फूल के गुच्छे के पास खड़ी थी। कूना को वह देख नहीं पाई। पर कूना ने सामने से माँ को भागते देखा तो खुश हो गई। कुछ कहा भी नहीं। कूना ने सोचा कि माँ को आगे जाने दो। दौड़कर वह माँ को पकड़ लेगी। जब माँ बहुत आगे निकल गई। तब कूना ने वहीं खड़े-खड़े चिल्लाया "माँ, मैं आ रही हूँ।" माँ ने पीछे मुड़कर देखा कि कूना की आवाज़ पीछे से आई है। पीछे मुड़ने के बाद कूना को दौड़ते आते देख वह खुश होकर हँसने लगी थी। फिर उसे लगा कि कूना की आवाज़ उसने पहले सुनी थी। मुड़ते ही पहले कूना दिखी नहीं थी। कुछ पल बाद दिखी। "माँ" सुनने के तुरन्त बाद वह मुड़ी थी। कूना ने पेड़ के नीचे रुके हुए ही कहा था, "माँ आ रही हूँ" इसके बाद दौड़ना शुरु किया। दौड़ते ही वह खंजन के नीचे से हट गई होगी और दिखने लगी होगी।

*जारी...*




साभार अरविंद गुप्ता एवं howtoons



स्वराली

# अण्डे से पक्षी तक का सफर

एक बार मेरे घर के बगीचे में एक चिड़िया ने घोंसला बनाया। चिड़िया का नाम सन बर्ड था। उसने अपना घोंसला हमारे बगीचे में लगी लक्ष्मण बेल पर बनाया था। यह घोंसला उसने दो-तीन दिन के अन्दर बना डाला। फिर एक दिन मैंने देखा कि उसने चार अण्डे दिए हैं। वह रोज़ उन्हें सेकती। 5-6 दिन बाद मैंने देखा कि घोंसले में दो बच्चे हैं। वे बहुत प्यारे थे। मैं रोज़ देखा करती। उनकी न तो आँखें खुली थीं न ही उनके शरीर पर बाल थे। उनकी माँ उन्हें बिलकुल भी अकेला नहीं छोड़ती थी। बस एक-दो बार वो उनके लिए खाना ढूँढने जाती थी। तीन दिन तक उसने अपने बच्चों को कीड़े (गिंडोले) खिलाए। पहले वह उन्हें खुद चबाती फिर उनके मुँह में डाल देती। चौथे दिन वे खूब चिल्ला रहे थे पर उनकी आवाज़ नहीं निकल रही थी। बस वे अपना मुँह फाड़ते रहते। उसी दिन दोपहर को एक कौए ने एक बच्चा उठा लिया। मुझे बुरा लगा।

लेकिन फिर भी उस दूसरे बच्चे के साथ मुझे खूब मज़ा आया। वह धीरे-धीरे बड़ा हो रहा था। हमने उसका नाम चिलिया रखा। पहले उसके पंख आए और उसकी आवाज़ भी आने लगी। वह रोज़ सुबह-शाम बस चिल्लाता रहता। मैं उसके साथ मस्ती करती। उसे फूँक मारती तो वो ज़ोर से चिल्लाता और आँख बन्द कर लेता। जब कभी मैं उसकी छोटी-सी चोंच को पकड़ती और उसके सिर को छूती तो वो फिर चिल्लाता। कभी-कभी मैं उसे छोटा-छोटा करके रोटी भी खिलाती। पर वो बाहर निकाल देता। जब उसकी माँ आती और रोटी पड़ी हुई देखती तो उसे उठा-उठाकर फेंक आती। घोंसले को वह हमेशा साफ रखती। यहाँ तक कि उस बच्चे की बीट को भी बाहर फेंक आया करती।

लेकिन पाँचवे दिन तो मैं बच्चे को देखकर चौंक ही गई! वो अपने घोंसले से बाहर निकलने की कोशिश कर रहा था। मैंने उसे वापस अन्दर बिठा दिया लेकिन वो बार-बार कोशिश करता रहा। फिर तीसरी-चौथी बार में वो बाहर आ गया। वह बाहर आकर धीरे-धीरे बेल पर चढ़ने लगा। फिर पौधे पर बैठने की कोशिश में एकदम से नीचे गिरने लगा। लेकिन फिर तुरन्त ही नीचे वाले पौधे पर सम्भलकर बैठ गया। पूरे दिन वह ऐसे ही करता रहा। मैंने उसे अपने हाथ में लिया और उसके साथ खूब खेली। मैं उसे घर ले आई और खूब मस्ती की। फिर वापस घोंसले में छोड़ दिया ताकि उसकी माँ उसे कुछ खिला सके।



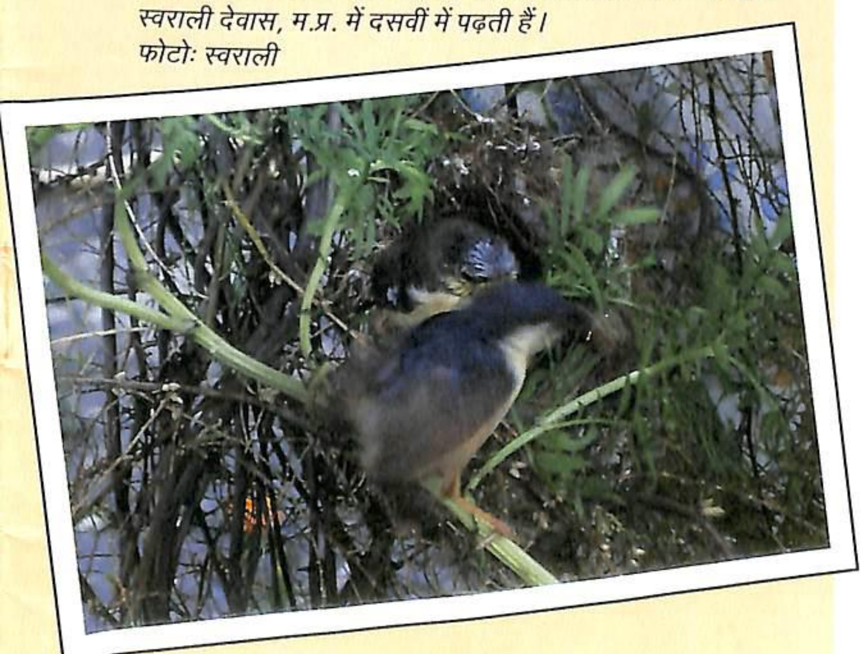


अगले दिन उसने फिर उड़ने की कोशिश की और थोड़ा-थोड़ा फुदककर उड़ने लगा। मैं उसे पौधों पर बिठाती और कभी अपनी उँगली पर लेकर अपना हाथ झटकती तो वो उड़के किसी पौधे या ज़मीन पर बैठ जाता। मैं उसे वापस घोंसले में छोड़कर चली जाती। जब वापस आती तो वो दिखता ही नहीं! क्योंकि अब तक वह काफी हद तक उड़ने लगा था। इस तरह वह पूरे दिन उड़ता ही रहता। कभी इस पौधे पर तो कभी उस पौधे पर। सातवें दिन वह कहीं भी दिखाई नहीं दिया। बाद में एक दिन सुबह दस बजे के करीब वह मुझे एक पेड़ पर बैठा मिला। वह पेड़ हमारे घर के सामने एक बगीचे में लगा था। वह एकदम ऊपर की ओर बैठा मिला। मैं दौड़कर अपनी छत पर गई और उसे उठाकर ले आई। फिर मैं उसके साथ खूब खेली। फिर वापस छोड़ दिया। इसके बाद वह बस दो दिन तक दिखा, फिर पता नहीं कहाँ चला गया। पर मैं उसे कभी नहीं भूल सकती क्योंकि उसके कई फोटो भी मैंने लिए, खासकर जब वह बाहर निकलने लगा था। कुछ फोटो उसकी माँ के साथ भी मैंने खींचे और कुछ, जब वह अपने घोंसले में बैठा रहता था। मुझे उसकी बहुत याद आई और दूसरे बच्चे की भी, जो अब नहीं रहा था। लेकिन, आखिर के दो दिनों में मैंने देखा कि जिन दो अण्डों में से बच्चे नहीं निकले थे, वो भी गायब हो गए थे।

इस बात को हुए तीन महीने बीत गए हैं। अब फिर से एक चिड़िया रोज़ वहाँ पर आती है और घोंसले के लिए जगह ढूँढती है लेकिन वहाँ पुराना घोंसला होने की वजह से वो चली जाती है। इसलिए मैंने वो पुराना घोंसला तोड़ दिया। सोचती हूँ कि क्या वह वही बच्चा है या कोई और, जो अब फिर से घोंसला बनाना चाहता है। अब शायद थोड़े ही दिन में मैं फिर से चिड़ियों का सफर देख पाऊँगी।

*स्वराली देवास, म.प्र. में दसवीं में पढ़ती हैं।*

*फोटोः स्वराली*



# आछी लागै जीजी रे मने राबड़ी



आछी लागै जीजी रे मने राबड़ी
अच्छी लागै मका की राबड़ी
घोड़-घाड़ यानै चूल्हे पै चढ़ाया
घोड़-घाड़ यानै चूल्हे पै चढ़ाया
नीचै लगा दी लाकड़ी
अच्छी लागै मका की राबड़ी।

घोड़-घोड़ यानै थाली में सिड़ाया
घोड़-घोड़ यानै थाली में सिड़ाया
ऊपर जमगी पापड़ी
अच्छी लागै मका की राबड़ी।
अच्छी लागै जीजी तेरी राबड़ी।

बूढ़ा नै घणी भावै है राबड़ी
ओ वा का दाढ़ हिलै नहीं जाबड़ी
अच्छी लागै मका की राबड़ी।
अच्छी लागै मका की राबड़ी।
अच्छी लागै जीजी तेरी राबड़ी।

*यह लोकगीत सरिस्का अभयारण्य के आसपास के गाँवों से लिया है।*

*संकलनः कप्तान सिंह सोलंकी, सम्पादनः प्रभात*

पंजीयन क्र. 50309/85 के अन्तर्गत भारत सरकार के समाचार पत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा पंजीकृत। डाक पंजीयन क्र. म.प्र./261/ भोपाल/2006-

अशोक वाजपेयी

# तोतों से बची पृथ्वी

तोतों के रास्ते पर पड़ता है हमारा घर
जिस रास्ते वे जंगल जाते
और वहाँ से लौटते हैं
उस रास्ते पर।

अनगिनत तोतों की हरी लकीरें
आती-जाती हैं हमारे ऊपर के आकाश में
और उनमें से कुछ
हमारे पेड़ों पर भी ठहरते हैं।

हम शहर में रहते हैं,
पता नहीं किस जंगल से किस जंगल को,
किस बसेरे से कहाँ काम को
तोते रोज़ जाते हैं।

कई बार मैं और मेरी बेटी
एक खेल खेलते हैं शर्त लगाने का
कि तोतों का कौन-सा दल
हमारे पेड़ों पर ठहरेगा
या नहीं ठहरेगा।

तोते हमें नहीं देखते
क्योंकि उनकी नज़रें हमेशा ही
पेड़ों और उन पर लगे फलों पर होती हैं।

तोते
एक हरा आकाश बनकर
छा जाते हैं पृथ्वी पर।
तोते छोड़ देते हैं
अधखाए फल की तरह
पृथ्वी को।


फोटोः पी. एम. लाड

स्वामी रैक्स डी रोज़ारियो प्रकाशक, मुद्रक सी. एन. सुब्रह्मण्यम की ओर से निदेशक, एकलव्य फाउण्डेशन द्वारा एकलव्य, ई-10 शंकर नगर, 61/2 बस स्टॉप के पास, भोपाल-462016, (म.प्र.) से प्रकाशित तथा आर. के. सिक्युप्रिन्ट प्रा. लि. प्लॉट नम्बर 15-बी, गोविन्दपुरा इंडस्ट्रियल एरिया, गोविन्दपुरा, भोपाल - 462021 (फोनः 0755 - 2687589) से मुद्रित। सम्पादकः सुशील शुक्ल।